अध्याय –2

गरीबी के कारण

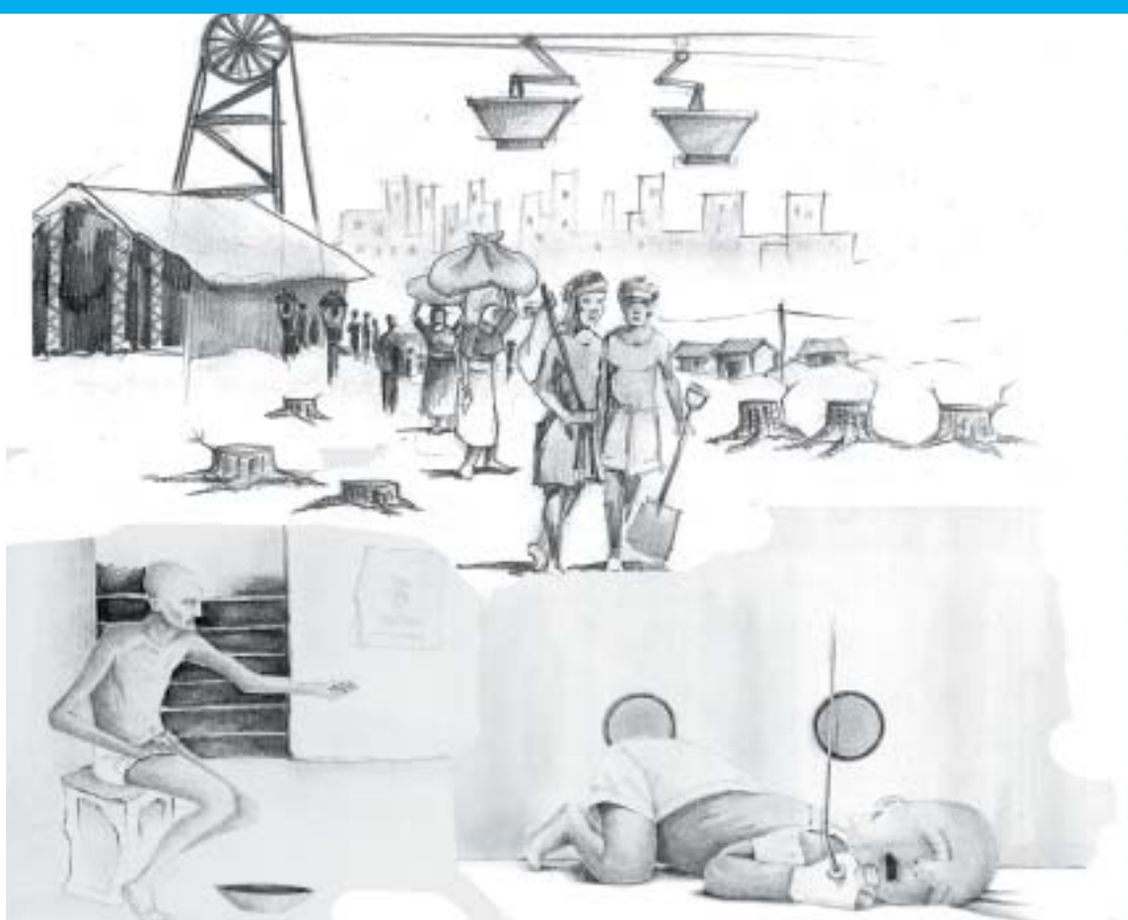

गरीबी कोई प्राकृतिक स्थिति नहीं है और न ही गरीबों ने स्वयं के लिए दुर्भाग्य चुना है। गरीबी के सताए लोग खुद की ग़लतियों और कमजोरियों के शिकार भी नहीं हैं। व्यक्तित्व या आचरण में कमी भी गरीबी का कारण नहीं है और न ही परिवार की विफलता और पालन–पोषण इसके लिए ज़िम्मेदार हैं। गरीबी के लिए अगर इस तरह के कारण बताए जाते हैं, तो यह वास्तव में गरीबी के असली कारणों को छिपाने, इसके अस्तित्व को उचित ठहराने और इसे दूर करने के दायित्व से मुंह मोड़ने की कोशिश है।

गरीबी अपने आप उत्पन्न नहीं होती। यह अंतर्राष्ट्रीय समाज, सरकारों और समुदायों की लापरवाही से पैदा होती है। बदतर होती जा रही गरीबी की स्थिति भेदभाव बरतने वाली और समाज के बड़े तबकों को विकास के लाभों से बाहर रखने की नीति का नतीजा है। इससे संसाधनों के असमान बंटवारे और इस असमानता को बरकरार रखने को बढ़ावा मिलता है और लोग विकास का लाभ प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं। समकालीन युग में गरीबी न केवल बढ़ी है, बल्कि सघन हो गई है। इसका कारण राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक नीतियाँ हैं जिनको 'वैश्वीकरण' का नाम दिया जाता है, चाहे वह 'आर्थिक ढ़ाँचे का संयोजन करने (SAPs) के बारे में हो या मुक्त वैश्विक पूँजी के हित में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को गुलाम बना देने के बारे में हो। वैश्वीकरण की रचनात्मक संभावनाओं में–सूचनाओं के आदान–प्रदान में बढ़ोतरी, मानवाधिकारों का मुक्त शासन और गरीबों के उत्पादों के लिए बाजारों को खोलना शामिल है। लेकिन कुछ प्रभावशाली ताकतें राष्ट्रीय स्तर पर देश की प्राथमिकताओं पर अपने दबाव डाल सकती हैं तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अन्यायपूर्ण व्यापार प्रणाली एवं एकाधिकारवादी संपदा व्यवस्था को लागू करवा सकती हैं। इसके कारण वैश्वीकरण की रचनात्मक संभावनाएँ निस्तेज हो जाती हैं।

समृद्ध समुदायों के बीच बढ़ती सामाजिक एकजुटता और अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक और आर्थिक हितों का आपस में गुंथा होना उन स्थितियों के लिए मुख्य रूप से ज़िम्मेदार है जो समाज के भीतर आर्थिक असमानता और वर्गभेद पैदा करती हैं। स्वार्थ पर आधारित इस

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

गठबंधन से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और निवेश के असंतुलित ढांचे का निर्माण होता है। नई प्रौद्योगिकी का असमान वितरण और संसाधनों का अनुचित आवंटन होता है और साथ ही रोज़गार की ऐसी पद्धतियां सामने आती हैं जो गरीबों के हितों के खिलाफ होती हैं। इन पूर्वाग्रहों को अक्सर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय प्रणालियों में कानून का रूप दे दिया जाता है। यह षड्यंत्र प्रवृत्ति बहुसंख्य राष्ट्रमंडल जनताओं को सार्थक आर्थिक अवसरों तक पहुंचने से रोकती है।

सामुदायिक संसाधनों की लगातार और अनियंत्रित चोरी, भ्रष्टाचार और सार्वजनिक तथा निजी धन के दुरुपयोग से भी गरीबी को बढ़ावा मिलता है। गरीबी के समानान्तर शक्तिशाली आर्थिक और राजनीतिक वर्ग कायम है जिसकी सामाजिक सुधार में कोई रुचि नहीं है। गरीबी बड़े पैमाने पर उन गैर–ज़िम्मेदार प्रणालियों से पैदा होती है जो लोगों पर शासन करती हैं और अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर उस विशिष्ट वर्ग द्वारा एकत्र की गई आर्थिक और सामाजिक सम्पत्ति की रक्षा करती हैं जो गरीबों को साधनहीन रखना चाहता है ताकि वे राजनीतिक प्रक्रिया में हिस्सा न ले सकें अथवा अपनी सहायता के लिए कानूनी प्रक्रिया को हरकत में न ला सकें। गरीबी का सबसे बड़ा नाता असमान सत्ता–संबंधों और कुछ शक्तिशाली लोगों की उस क्षमता से है जिससे वे गरीबों का उत्पीड़न, दमन और शोषण बेरोकटोक करते हैं।

वैश्वीकरण

''मैं एक व्यक्ति की पीठ पर उसका गला पकड़ कर सवार हूं और वह मुझे ढो रहा है और मैं स्वयं को और दूसरों को विश्वास दिला रहा हूं कि मुझे अफ़सोस है, कि मैं हर संभव तरीके से उसका भार कम करना चाहता हूं, सिवाय उसकी पीठ से उतरने के ''

लियो टॉलस्टॉय

'वैश्वीकरण' शब्द का कोई सुस्पष्ट अर्थ नहीं है। किन्तु गरीबी उन्मूलन के वर्तमान संदर्भ में इसका अर्थ है–अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के संचालन में बाज़ार के सिद्धान्तों का बढ़ता प्रभाव, व्यापार और निवेश का सभी राष्ट्रों में प्रवेश, निजीकरण के माध्यम से अर्थव्यवस्थाओं का उदारीकरण, आयात और निर्यात पर राष्ट्रीय प्रतिबंध हटाना और वित्तीय बाजारों तथा पूंजी के प्रवाह को मुक्त करना। निःसंदेह, वैश्वीकरण से सांस्कृतिक और ज्ञान संबंधी आदान–प्रदान में बढ़ोतरी, सरकारी और गैर–सरकारी संगठनों के नेटवर्क का विस्तार, परस्पर–निर्भरता के अहसास में वृद्धि, मानवाधिकारों की अवधारणा और विस्तार, विश्वव्यापी समस्याओं से निबटने में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और ऐसी ही अन्य उपलब्धियां हासिल हुई हैं। किन्तु ये गतिविधिया वैश्वीकरण के प्रतिकूल प्रभाव को कभी–कभार कम करने के बावजूद अन्ततः विश्व आर्थिक प्रक्रियाओं द्वारा निर्धारित होती है और इन प्रक्रियाओं का ही उनमें प्रभुत्व रहता है। इन आर्थिक प्रक्रियाओं के बारे में कुछ भी अनिवार्य नहीं है। वे खास नीतिगत फैसलों का नतीजा हैं जो विश्व के उस विशिष्ट वर्ग द्वारा किए जाते हैं जो अनेक संगठनों और संस्थानों का पोषण करता है। ये संगठन और संस्थान इस नई आर्थिक व्यवस्था खासकर 'विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू टी ओ) और अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों की बढ़ती भूमिका और प्रभाव का आधार हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में प्रौद्योगिकी की नवीनता और प्रबन्ध का विशेष योगदान है और इस नई प्रौद्योगिकी पर सर्वोच्च स्वामित्व और नियंत्रण अमीरों का है।

असमानता और गरीबी वैश्वीकरण से बहुत पहले से मौजूद हैं और गरीबी के कारणों को सिर्फ इसी के साथ जोड़कर नहीं देखा जा सकता। किन्तु यह अद्भुत घटना जितनी तेज़ी से घटी है; उसके संचालन के पीछे हित–साधन का जो बल है; पिछले 20 या अधिक वर्षों से अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं, राजनीति और समुदायों पर इसका जो व्यापक प्रभाव पड़ा है और आबादी का वह विस्तृत भाग

लाभ कमाने की लालसा

सच्चाई यह है कि वैश्वीकरण में मानव मूल्यों या कल्याण की बजाय लाभ कमाने की लालसा अधिक है। जैसा कि विलियम ग्रैडर ने कहा :[9]

''व्यापार की शर्तों का संबंध आमतौर पर वाणिज्यिक समझौतों से ही जोड़कर देखा जाता है, किन्तु वे नैतिक मूल्यों का अन्तर्निहित वक्तव्य भी होते हैं। वर्तमान संदर्भ में विश्व–व्यवस्था मानव जीवन से अधिक महत्व सम्पत्ति को दे रही है। जब चीन जैसा राष्ट्र पूंजी की चोरी करता है, कापीराइट, फिल्म या प्रौद्योगिकी की चोरी करता है, तो अन्य राष्ट्र उसे रोकने के लिए कार्रवाई करते हैं और दोषी राष्ट्र के व्यापार पर प्रतिबन्ध और दंड शुल्क लगाने की पेशकश करते हैं। किन्तु, जब मानव जीवन चोरी हो जाता है, तो दोषी राष्ट्र के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं होती, क्योंकि मुक्त बाज़ार के विवेक के अनुसार वैसा होना कोई अपराध नहीं है।''

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

जिस पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा है; इनके कारण वैश्वीकरण का गरीबी के प्रसार के साथ अनिवार्य संबंध बन गया है और इससे करोड़ों उपेक्षित लोग गरीबी के गर्त में धंसते जा रहे हैं।

दक्षिण एशियाई देशों ने औपनिवेशिक शासन से अपने को मुक्त कराने के तुरन्त बाद आर्थिक विकास का "आत्मनिर्भरता" वाला मॉडल अपनाया। सरकार ने उत्पादन और वितरण, दोनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। लोक कल्याण के नाम पर अफसरशाही ने अर्थव्यवस्था के बड़े हिस्से पर नियंत्रण कर लिया। निजी उपक्रमों को शुल्कों में बहुत अधिक संरक्षण दिया गया और अर्थव्यवस्था से विदेशी प्रतिस्पर्धियों को बाहर रखा गया। लेकिन 1980 के दशक के आखिर के और 1990 के प्रारंभिक वर्षों में भुगतान असंतुलन के संकट, विदेशी और घरेलू ऋणों के बढ़ते बोझ, ऋणों के लिए बढ़ती कर्ज़ की देनदारी, भारी वित्तीय घाटे, विदेशी मुद्रा की कमी और इनसे संबंधित समस्याओं के कारण भारत, पाकिस्तान और बांगलादेश जैसे देशों को, जो अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष/विश्व बैंक समूह के दबाव का पहले से ही सामना कर रहे थे, अपनी अर्थव्यवस्थाओं को मुक्त करने पर मजबूर होना पड़ा। वित्तीय घाटे को कम करने के लिए सरकारी खर्च में कटौती की गयी और राज्य द्वारा दी जानी वाली सहायता यानी सब्सीडी घटा दी गयी। विदेशी व्यापारियों और निवेशकों को आकृष्ट करने के लिए अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिबंधों को कम किया गया। इस क्षेत्र में श्रीलंका अकेला अपवाद है जिसने एक दशक पहले ही उदारीकरण और विश्व अर्थव्यवस्था के साथ जुडने का कार्यक्रम अपनाया था।

वैश्वीकरण का दक्षिण एशिया का अनुभव मिले–जुले परिणामों वाला रहा। विभिन्न देशों के आकार और प्राकृतिक, मानवीय व पूंजीगत संसाधनों और आर्थिक सुदृढ़ता की दृष्टि से अंतर होने के कारण सभी अर्थव्यवस्थाओं को समान लाभ नहीं मिल सका, मगर इस बात की पुष्टि के लिए पक्के प्रमाण हैं कि वैश्वीकरण के समर्थकों ने जिस ऊंची विकास दर का अनुमान लगाया था, वैसा इस क्षेत्र में कुछ नहीं हुआ। 1990 के दशक में दक्षिण एशिया की औसत आर्थिक विकास दर 5.4 प्रतिशत रही जो 1980 के दशक की 5.8 प्रतिशत विकास दर से भी कम है।[92] भारतीय अर्थव्यवस्था जो पिछले दशकों में 3–3.5 प्रतिशत वार्षिक दर के हिसाब से बढ़ती रही, उदारीकरण की नीतियों को अपनाने के बाद 7 प्रतिशत के स्तर पर पहुंच गयी। फिर भी दक्षिण एशिया क्षेत्र की विकास दर में गिरावट आयी है। 1990 के दशक में गरीबों और अमीरों के बीच की खाई और गहरी हुई। बांगलादेश में तो शहरों और कस्बों में रहने वाले गरीबों की हालत पिछले दशक के मुकाबले और बदतर हो गयी। श्रीलंका में और परिवार गरीबों की श्रेणी में शामिल हो गये, जबकि जो लोग पहले ही गरीब थे उनकी हालत और खराब हो गयी। पाकिस्तान में 28.1 प्रतिशत आबादी 1980 के दशक के मध्य में गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रही थी। एक दशक से चले आ रहे उदारीकरण और विश्व अर्थव्यवस्था के साथ जुड़ने के प्रयासों के बाद यह आंकड़ा बढ़कर 37.7 प्रतिशत पहुंच गया।[93]

भारत में सरकारी आंकड़ों के अनुसार गरीबी में काफी कमी आयी और यह 1980 के दशक के मध्य में 44.5 प्रतिशत से घटकर सहस्राब्दि के अंत तक 26.1 प्रतिशत के स्तर पर आ गयी।[94] लेकिन ये आंकड़े विवाद का विषय बन गए। चूंकि गरीबी का आकलन करने की प्रविधि में हाल ही में परिवर्तन किया गया था, इसलिए ताजा सर्वेक्षण के नतीजों की तुलना पहले के सर्वेक्षणों के आंकड़ों से नहीं की जा सकती। अगर इस कमी को दूर कर भी दिया जाए तो भी 1990 के दशक में गरीबी कम हुई। लेकिन देश में आर्थिक विकास की ऊंची दर के बावजूद गरीबी में कमी की रफ्तार पहले के समान बनी रही।[95] भारत के भीतर गरीबी संबंधी क्षेत्रीय असमानताएं बढ़ीं। गुज़रात, कर्नाटक, महाराष्ट्र और तमिलनाडु जैसे पश्चिम और दक्षिण के राज्यों में गरीबी में कमी की रफ्तार तेज़ रही, जबकि उड़ीसा और बिहार जैसे पूर्वी राज्यों में 40 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गरीबी के बोझ से दबी रही। योजना आयोग के अनुमानों के अनुसार इन दोनों राज्यों में सन् 2007 तक गरीबी का यही स्तर बना रहेगा।[96]

लेकिन इसके विरोध में भी तर्क दिये जाते हैं। इनमें वैश्वीकरण की कार्यकुशलता और विश्व के संसाधनों का बेहतरीन उपयोग; मानवीय सृजनात्मकता को प्रोत्साहन; लोकतांत्रीकरण के प्रसार; विकास के फायदों में सबको समान भागीदारी तथा समृद्धि और अधिकार संपन्नता के युग में ले जाने जैसी इसकी क्षमताओं पर विशेष ज़ोर दिया जाता है। लेकिन ये सब फायदे आज के राष्ट्रमंडल में एक छोटे से अभिजातवर्ग के लोगों तक ही सीमित रह गये हैं। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। 1970 के दशक में दुनिया के कुल निर्यात में दक्षिण एशिया का हिस्सा 1.1 प्रतिशत था। लेकिन 1980 के दशक में यह छोटा सा हिस्सा भी और घटकर 0.7 प्रतिशत हो गया। विश्व पहले अर्थव्यवस्था के साथ प्रगतिशील तरीके से जुडने के एक दशक के प्रयासों के बावजूद, सहस्राब्दि के अंत तक विश्व के कुल निर्यात में दक्षिण एशिया का हिस्सा केवल 1 प्रतिशत था।[97]

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और गरीबी में कमी – वाशिंगटन डी.सी. में समीक्षा

नागरिक समाज के कई कार्यकर्ताओं ने विकासशील देशों में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष की नीतियों और हस्तक्षेप का विरोध किया है। संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम (Structural Adjustment Facility-SAF) और विस्तारित संरचनात्मक समायोजन सुविधा (Extended Structural Adjustment Facility-ESAF) को अपनाने वाले देशों में गरीबी बढ़ने का कारण इन कार्यक्रमों को ही माना जा रहा है। लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष की कठोर आलोचना वाली एक रिपोर्ट सहस्राब्दि के अंत में अमेरिका से आयी है।

1998 में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक और क्षेत्रीय विकास बैंकों जैसी अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के कार्यनिष्पादन की समीक्षा के लिए अमेरिकी कांग्रेस ने अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्था सलाहकार आयोग गठित किया। कार्नेगी मेलन विश्वविद्यालय के प्रो0 एलन मेल्टज़र की अध्यक्षता वाले इस आयोग ने सन् 2000 में अपनी रिपोर्ट दी।[98] सार्वजनिक तौर पर सुनवाई करने के बाद मेल्टज़र आयोग ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि आर्थिक विकास और गरीबी कम करने के बारे में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के कार्यनिष्पादन की काफी आलोचना की गयी है। उदाहरण के लिए कुछ आलोचनाएं ये हैं :–

- अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को गरीबी उन्मूलन का अनुभव नहीं है।
- भुगतान असंतुलन से निपटने के लिए अल्पावधि सहायता और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की दीर्घावधि संरचनात्मक समायोजन नीतियों, दोनों से कर्ज़ लेने वाले देशों को वास्तविक रूप से आर्थिक लाभ नहीं मिले हैं।
- हाल के वित्तीय संकट के दौरान जब अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष ने पूर्वी एशिया और लातीनी अमेरिका के देशों को बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं को आर्थिक संकट से उबारने के लिए सहायता दी तो जो लोग गरीबी से निकलने के लिए एड़ी चोटी का जोर लगा रहे थे उन्होंने देखा कि उनकी संपत्ति और बचत नष्ट हो गयी और उनका छोटा–मोटा कारोबार ठप्प हो गया।
- जी–सात (G-7) सरकारें, खास तौर पर अमेरिका, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का इस्तेमाल अपने राजनीतिक हितों को साधने के लिए करते हैं और
- अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का प्रबंधन इसके निगरानी बोर्ड से अलग नहीं है जो अपने कार्यक्रमों के कार्यनिष्पादन का मूल्यांकन करता है। इसकी कार्रवाई सार्वजनिक रूप से नहीं होती और औपचारिक मतदान तो कभी कभार ही होता है।

आयोग ने न तो इन आलोचनाओं का समर्थन किया और न इन्हें सरसरी तौर पर अस्वीकार किया, लेकिन उसने कहा कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के प्रयासों से उस तरह के वित्तीय संकटों को शायद ही टाला जा सका है जैसे कि हाल के वर्षों में पूर्वी एशियाई तथा लैटिन अमेरिकी देशों को झेलने पड़े हैं। आयोग ने विचार व्यक्त किया: ''बजाय इसके, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के कार्यक्रमों और सलाह से नयी उभरती समस्याओं के साथ आवश्यक समायोजन में देरी हुई है जिससे वास्तव में लम्बे समय के लिए आर्थिक विकास दबकर रह गया है।''

आयोग ने सिफारिश की है कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में सुधार कुछ निश्चित दिशा–निर्देशों पर आधारित होने चाहिए जिनमें से कुछ प्रमुख दिशा–निर्देश इस प्रकार हैं :

- कर्ज़ देने वाले और लेने वाले, दोनों ही देशों में लोकतांत्रिक प्रक्रिया की स्वायत्तता का सम्मान और
- यह सुनिश्चित करने के लिए कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के कर्मचारी अपने कार्यों के लिए जवाबदेह बने इसके काम में पारदर्शिता और जवाबदेही।

आयोग की सिफारिशें :

- अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं में अंतिम उपाय के रूप में कर्ज़ देने वाले की भूमिका निभानी चाहिए और कम शर्तों के साथ केवल अल्पावधि वित्तीय सहायता ही देनी चाहिए।
- गरीबी कम करना विश्व बैंक जैसी अन्य संस्थाओं के क्षेत्राधिकार में आता है, इसलिए इसके कार्य का दोहराव नहीं हो, इसके लिए ई.एस.ए.एफ. और गरीबी में कमी लाने तथा विकास को बढावा देनेवाले कार्यक्रमों को समाप्त कर दिया जाना चाहिए।
- अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अधिकार पत्र के अनुसार उसे आर्थिक नीति के बारे में केवल सलाह ही देनी चाहिए और देशों पर कोई शर्तें नहीं थोपनी चाहिए और
- अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को कर्ज़ के भारी बोझ से दबे उन गरीब देशों के सभी ऋण माफ कर देने चाहिए जो विश्व बैंक और अन्य क्षेत्रीय बैंकों की देखरेख में विकास रणनीति पर अमल कर रहे हैं।

एक साल बाद प्रो. एलेन मेल्टज़र ने अमेरिकी कांग्रेस की संयुक्त आर्थिक समिति को बताया कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने दीर्घावधि ऋण कार्यक्रमों को कम करना शुरू कर दिया है और अपनी ऋण देने संबंधी गतिविधियों की देश–वार रिपोर्टें प्रकाशित कर अधिक पारदर्शिता बरत रहा है।[99] अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष बोर्ड विकासशील देशों में उसकी नीतियों के कारण हुए बुरे प्रभाव को अस्वीकार करने की बजाय इन देशों में हुए नुकसान का मूल्यांकन कर रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के पुनर्गठित कार्यक्रमों से विकासशील देशों में गरीबी कम करने में क्या कोई खास मदद मिलेगी, यह अभी देखना बाकी है।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

वैश्वीकरण की विचारधारा पूरी तरह बाज़ार उदारीकरण, निजी अर्थव्यवस्था के गुणगान और अर्थव्यवस्था के सरकारी प्रबन्ध या उसमें सरकार के हस्तक्षेप की आलोचना पर आधारित है। इस विचारधारा के अनुसार एक राष्ट्र अपने लोगों का अधिकतम कल्याण विश्व अर्थव्यवस्था के साथ जुड़कर ही कर सकता है। जहां तक वैश्वीकरण की विचारधारा में अधिकारों की चिन्ता का प्रश्न है, इसमें कुछ ऐसे नागरिक और राजनीतिक अधिकारों को महत्व दिया गया है, जो राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पूंजीवाद के संचालन के लिए अनिवार्य समझे गए हैं, जैसे निजी संपत्ति का बढ़ता क्षेत्र, उसका स्पष्ट निर्धारण और संरक्षण, वाणिज्यिक अनुबंधों पर कड़ाई से अमल, न्यायपालिका की स्वतंत्रता, और कानून का शासन। विश्व के स्तर पर पूंजीवाद के लिए अनुकूल परिस्थितियों को बढ़ावा देने के लिए कानून, संस्थाएं एवं नीतियाँ बनाने तथा उन्हें लागू करने में राज्य की सक्रिय भूमिका ज़रूरी है। किन्तु यह विचारधारा उन आर्थिक और सामाजिक अधिकारों के संरक्षण के लिए सरकार के विशिष्ट हस्तक्षेप के खिलाफ है, जिनका लक्ष्य रचनात्मक नीतियों और पुनर्वितरक तंत्र के माध्यम से सामाजिक अन्याय दूर करना या विदेशी ताकतों से होने वाले नुकसान से घरेलू अर्थव्यवस्था की रक्षा करना है।

इस वैचारिक दृष्टिकोण का इस्तेमाल उन नीतियों की समाप्ति को उचित ठहराने के लिए किया गया है जो अब तक उपेक्षितों की सहायता और शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच का न्यूनतम स्तर मुहैया करा सामाजिक एकजुटता को बढ़ाती थीं। अक्सर यह कहा जाता है कि लोगों की खुशहाली की गारंटी पर अमल करने में बाज़ार की विफलता से जो नुकसान होगा, वह सरकार द्वारा अधिकारों की रक्षा करने में विफलता से होने वाले नुकसान की तुलना में कम ही होगा। कुप्रशासन से होने वाली त्रासदी की अनदेखी नहीं की जानी चाहिए। किन्तु, गैर–ज़िम्मेदाराना ढंग से दायित्वों का निर्वाह करने वालों की मौजूदगी का यह अर्थ नहीं है कि लोकतंत्र और अधिकार गैर–ज़िम्मेदार बाज़ार के नियंत्रण में सौंप दिए जायें। इन हालातों में उत्पन्न खतरों को उन देशों में देखा जा सकता है जहाँ कई सालों से आर्थिक ढ़ाँचे का समायोजन करने वाले कार्यक्रमों का दबाव बना हुआ है।

खुशहाली की खोज में बरबादी

मानव–गरिमा के स्थान पर वाणिज्यिक हितों को प्राथमिकता देने वाले बाहरी नुस्खे से ज़ाम्बिया में बरबादी हुई है।

एसएपीज़ की शर्तों का पालन करते हुए जाम्बिया की सरकार ने निजीकरण कार्यक्रम को तेज किया। किन्तु सरकारी क्षेत्र से बेची गई 50 प्रतिशत कम्पनियां अब दिवालिया हो गई हैं। 1991 में शुरू किए गए आर्थिक उदारीकरण कार्यक्रमों के परिणाम स्वरूप 60,000 से अधिक लोग अपने रोज़गार से हाथ धो चुके हैं। कमाने वाला एक और खाने वाले अनेक, जैसी परिस्थिति के चलते 4,20,000 लोग बेसहारा हो गए हैं। जाम्बिया के 40 प्रतिशत बच्चे घोर कुपोषण से ग्रस्त हैं। सरकार को सार्वजनिक खर्च में कटौती और स्कूल फीस शुरू करने जैसे उपाय करने पड़े हैं। उदाहरण के लिए, ज़ाम्बिया सरकार 1991 में प्राथमिक स्कूल के प्रत्येक विद्यार्थी पर 60 अमेरिकी डालर खर्च करती थी और अब मात्र 15 डालर खर्च करती है। सबसे पहले लड़कियों को स्कूल से हटाया जाता है। 1980 में 5 वर्ष से कम आयु के शिशुओं में मृत्युदर 162 प्रति एक हजार थी जो अब बढ़कर 202 प्रति हजार हो गई है। अर्थात् हर पाँच पैदाइश के मुकाबले एक बच्चे की मौत। 'औसत प्रत्याशित आयु अब गिरकर 40 पर पहुंच गई है जो 80 के दशक के मध्य में 54 थी।[100]

पहले से कमज़ोर देशों में ताकतवर ऋणदाताओं द्वारा कारग़र ढंग से लागू किए गए एसएपीज़ वैश्वीकरण में तेज़ी लाने में अग्रदूत का काम कर मददगार रहे हैं। इन कार्यक्रमों से प्रभावित देशों में न केवल आर्थिक विकास पर नकारात्मक असर पड़ा है, बल्कि राज्य के प्राधिकार और कमज़ोर लोगों के अधिकारों को सिलसिलेवार क्षति पहुंची है तथा बड़ी संख्या में लोगों के गरीबी की रेखा से नीचे धकेले जाने के कारण समाज में असमानता और भी बढ़ गई है। इन नतीजों को देखते हुए एसएपीज़ के प्रबल समर्थक विश्वबैंक को यह स्वीकार करना पड़ा कि राष्ट्रों को खुशहाल बनाने में ये कार्यक्रम विफल रहे हैं। स्वास्थ्य देखभाल प्रणालियां नाकाम हो रही हैं, दवाओं की उपलब्धता कठिन हो गई है और सरकारी अनुदानों में भारी कटौती की वजह से स्कूल बंद किए जा रहे हैं। उदाहरण के लिए, ज़िम्बाब्वे में 1990 में यह कार्यक्रम शुरू होने के बाद से गरीबी की श्रेणी में आने वाले परिवार 1991 के 40.4 प्रतिशत से बढ़कर 1996 में 63 प्रतिशत

cyan black

विश्व बैंक और गरीबी में आई कमी – वाशिंगटन डी.सी. में समीक्षा

वाशिंगटन डी.सी. में विश्व बैंक मुख्यालय के प्रवेश द्वार पर एक बड़े साइनबोर्ड पर लिखा है : ''हमारा स्वप्न है गरीबी से मुक्त विश्व'' विश्व बैंक समूह (बॉक्स देखें) और तीन क्षेत्रीय विकास बैंकों–एशियाई विकास बैंक, अफ्रीकी विकास बैंक और इंटर–अमेरिकन विकास बैंक के दुनिया भर में फैले 170 कार्यालयों में कुल 17,000 लोग कार्यरत हैं। इनका 50,000 करोड़ अमेरिकी डॉलर का कोष है जो सदस्य देशों से एकत्र राशि से बनाया गया है। अब तक विश्व बैंक और क्षेत्रीय विकास बैंकों ने विकासशील देशों को 30,000 करोड़ अमेरिकी डॉलर कर्ज़ में दिये हैं। बांगलादेश, भारत, पाकिस्तान और श्रीलंका विश्व बैंक और एशियाई विकास बैंक दोनों के सदस्य हैं।

अब इस पर विचार कीजिए :

- 1987 और 1998 के बीच विश्व बैंक ने करीब 20,000 करोड़ अमेरिकी डॉलर गरीबी हटानेवाले कार्यक्रमों पर विश्व भर में खर्च किये। फिर भी सहस्राब्दि परिवर्तन के समय एक डॉलर दैनिक से कम की आमदनी में गुज़र–बसर करने वाले लोगों की तादाद में मामूली गिरावट आयी है – 28 प्रतिशत से 24 प्रतिशत – यानि केवल 4 प्रतिशत गिरावट।
- विश्व बैंक के दावों और वायदों तथा उपलब्धियों व कार्यनिष्पादन में भारी अंतर है। विश्व बैंक के अपने मूल्यांकन के अनुसार भी इसके कार्यक्रमों की असफलता दर 59 प्रतिशत है। सबसे गरीब देशों में कार्यक्रम कार्यान्वयन में असफलता की दर 60–75 प्रतिशत तक है। विश्व बैंक के गठन का उद्देश्य ऐसे विकासशील देशों को ऋण उपलब्ध कराना था जो अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी बाज़ार का (इसमें विदेशी बैंक, वित्तीय संस्थाएं तथा अन्य निवेशक शामिल हैं।) फायदा उठाने में असमर्थ थे। फिर भी 1993 और 2000 के बीच 70 प्रतिशत ऋण ऐसे 11 देशों को दिये गये जो अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में आसानी से कर्ज़ ले सकते थे।
- इन्हीं 11 देशों को विश्व बैंक से गैर–इमदादी सहायता (non-aid assistance) भी मिली जबकि शेष 145 विकासशील देशों को बची–खुची राशि से संतोष करना पड़ा।
- संक्षेप में बैंक महंगा, अकुशल, अफसरशाही से ग्रस्त साबित हुआ जिसके पास स्पष्ट लक्ष्य का अभाव था।
- यह मूल्यांकन विश्व बैंक की नीतियों के विरोध में जन–समर्थन जुटाने का प्रयास कर रहे असंतुष्ट नागरिक समाज के समूहों के किसी गठबंधन द्वारा नहीं किया गया है। यह आलोचना प्रो0 एलेन मेल्टज़र की अध्यक्षता में गठित अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्था सलाहकार आयोग द्वारा की गयी है। इस आयोग का गठन अमेरिकी कांग्रेस ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक जैसी ऋण देने वाली अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसियों के कामकाज की जाँच करने और भविष्य के लिए नीति–निर्देश सुझाने के लिए किया था।[101] सन् 2000 में मेल्टज़र आयोग ने ये सिफारिशें कीं :
- विश्व बैंक को ऐसे देशों को अधिक ऋण देने चाहिए जो अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार से कर्ज़ उठाने की स्थिति में नहीं हैं।
- सबसे गरीब देशों में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के लिए ऋण देने की बजाय प्रत्यक्ष अनुदान देना बेहतर तरीका है।
- स्वास्थ्य, शिक्षा और बुनियादी ढांचे के विकास के लिए सहायता उपलब्ध कराना एक बार फिर विश्व बैंक का मुख्य सरोकार होना चाहिए।
- विश्व बैंक को ऐसी वस्तुएं और सेवाएं उपलब्ध कराने पर ज़ोर देना चाहिए जो विश्व समुदाय के लिए उपयोग में लाई जाएं। इनमें उष्ण देशों में होनेवाले बीमारियों और एड्स के उपचार की सुविधाओं में सुधार, पर्यावरण संबंधी संसाधनों का संरक्षण, उष्ण देशों में कृषि टेक्नोलॉजी का विकास तथा बेहतरीन प्रबंधकीय और नियामक तौर–तरीकों का विकास शामिल हैं।
- विश्व बैंक को भारी गरीबी से ग्रस्त ऐसे देशों के ऋण माफ कर देने चाहिए जो उसकी देखरेख में कारगर विकास रणनीति पर अमल कर रहे हैं।

2001 में प्रो0 मेल्टज़र ने अमेरिकी कांग्रेस की संयुक्त आर्थिक समिति को बताया कि आयोग के निष्कर्षों और सिफारिशों के बारे में विश्व बैंक की प्रारंभिक प्रतिक्रिया बड़ी उग्र रही। लेकिन विश्व बैंक ने अपनी प्राथमिकताओं तथा गतिविधियों पर पुनर्विचार शुरू कर दिया है। प्रो0 मेल्टजर ने सुझाव दिया कि विश्व बैंक को अपनी कार्यनिष्पादन मूल्यांकन प्रणाली में सुधार करना चाहिए और अपनी सभी रिपोर्टों को सार्वजनिक करना चाहिए ताकि देश यह समझ सकें कि वह सबसे गरीब देशों में गरीबी कम करने में क्यों असफल रहा।[102]

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

विश्व बैंक समूह के पांच पॉंडव

अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास बैंक (International Bank for Reconstruction and Development -IBRD) और अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ (International Development Association -IDA) विकासशील देशों को गरीबी उन्मूलन के लिए वित्तीय और तकनीकी, दोनों तरह की विकास सहायता उपलब्ध कराने की ज़िम्मेदारी उठाने वाले इन संगठनों को आमतौर पर विश्व बैंक के नाम से जाना जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (International Finance Corporation -IFC) : इसे विकासशील देशों में गरीबी कम करने और लोगों के जीवन में सुधार के लिए स्थायी आधार पर निजी क्षेत्र का निवेश बढ़ाने की ज़िम्मेदारी सौंपी गयी है।

बहुपक्षीय निवेश गारंटी एजेंसी (Multilateral Investment Guarantee Agency - MIGA) : इसे विकासशील देशों में गरीबी कम करने और लोगों के जीवन में सुधार के उद्देश्य से विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को बढ़ावा देने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय निवेश–विवाद समाधान केन्द्र (International Centre for Settlement of Investment Disputes -ICSID) : इसे विदेशी निवेशकों और सरकारों के बीच निवेश संबंधी विवादों में मध्यस्थता को आसान बनाने तथा इन्हें सुलझाने की ज़िम्मेदारी सौंपी गयी है।

पर पहुंच गए। इसी अवधि में घोर गरीबी से ग्रस्त परिवार 16.7 प्रतिशत से बढ़कर 35.7 प्रतिशत हो गए। आज ज़िम्बाब्वे के 75 प्रतिशत परिवार गरीब हैं और 47 प्रतिशत बेहद गरीब की श्रेणी में आते हैं। एसएपीज़ का सर्वाधिक कमज़ोरों पर सबसे ज़्यादा असर पड़ा है, जबकि इनका लाभ मुख्यतः वाणिज्यिक क्षेत्र को पहुंचा है।

अंतर्राष्ट्रीय विकास सहायता (Overseas Development Assistance - ओ डी ए) विकसित और विकासशील देशों के बीच की खाई को कम करने के एक उपाय के रूप में जानी जाती है। किन्तु, शुरू से ही ओ डी ए की भूमिका सिर्फ मानवीय सहायता तक ही सीमित नहीं रही है। सहायता करने वाले देश की विदेश नीति के लक्ष्य इस कार्यक्रम का अभिन्न अंग रहे हैं। ऋणदाता/विकसित देशों की कच्चे माल और बाजारों की ज़रूरतों और संसाधनों के विषम वितरण को देखते हुए ओ डी ए सहायता प्राप्तकर्ता देशों की नीतियों और अर्थ–व्यवस्थाओं को एक विशेष रूपाकार प्रदान करने का एक माध्यम बन गया। चूंकि अधिकतर सहायता ऋणों के रूप में दी गई, अतः 'विकास' के प्रयास की परिणति भारी ऋणग्रस्ता के रूप में सामने आयी–जिससे एक ऋण–चक्र बनता चला गया। 1999 तक दुनिया के सबसे अधिक कर्ज़दार 41 गरीब देशों पर 20,000 करोड़ अमेरिकी डॉलर से अधिक का ऋण था, जबकि 1990 में यह ऋण 18,300 करोड़ अमेरिकी डॉलर और 1980 में 5,500 करोड़ अमेरिकी डॉलर का था।[103] इन देशों को विकास में निवेश से अधिक धन कर्ज़ का ब्याज चुकाने पर खर्च करने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है। इन निर्धनतम देशों में से दस राष्ट्रमंडल के सदस्य हैं (अगले पृष्ठ पर बॉक्स देखें)। भारी ऋणगस्त गरीब देशों को राहत देने संबंधी संगठन – Heavily Indebted Poor Countries Initiative (HIPC) – का विकास किया गया ताकि भारी ऋणों का बोझ कम किया जा सके, लेकिन यह संगठन कुछ खास नहीं कर पाया। ऋणदाताओं को इस बात का यकीन दिलाना बड़ा कठिन होता है कि आगे चलकर एक गरीब देश में निवेश करना अधिक कारगर सिद्ध होगा। क्योंकि अन्य देशों की तुलना में गरीब देश में मज़दूरों को जुटाना आसान होता है, जबकि अन्य देश जो गरीब नहीं हैं सामाजिक, नैतिक और आर्थिक दृष्टि से न्यायोचित अंश से अधिक संसाधनों को निगल जाते हैं।

हालांकि 1970 के दशक में पाकिस्तान 'भारी कर्ज़दार देश' बन गया था (सारणी 8 देखें) क्योंकि उसने अन्तर्राष्ट्रीय कर्ज़दाता संस्थाओं, विदेशी संस्थाओं और निजी क्षेत्र की संस्थाओं से भारी ऋण ले रखे थे, लेकिन कोई भी दक्षिण एशियाई देश भारी कर्ज़दारी वाले गरीब देशों (HIPC) में शामिल नहीं था। हाल के वर्षों में बांगलादेश, भारत, पाकिस्तान और श्रीलंका ने अपने बढ़ते हुए कर्ज़ों को चुकाने के लिए विकसित देशों से अधिक कर्ज़ लिया है। 1994 और 1999 के बीच दक्षिण एशियाई देशों ने विकसित देशों को 2000 करोड़ अमेरिकी डॉलर लौटाए जो कि इसी अवधि में उनके द्वारा लिए गए कर्ज़ से अधिक है।[104] भारत और पाकिस्तान में सरकारी राजस्व का क्रमशः 38 प्रतिशत और 43 प्रतिशत हिस्सा कर्ज़ की अदायगी में खर्च हो जाता है। यह स्थिति चिंता का विषय है क्योंकि अपने सीमित राजस्व के आधे से अधिक हिस्से को विकास कार्यक्रमों में लगाने की बजाय कर्ज़ चुकाने में खर्च करने वाले इन देशों के कर्ज़ के जाल में फंस जाने की संभावना है।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

वैश्वीकरण के समर्थकों ने इसे विकासशील देशों के लिए विदेशी निवेश आकृष्ट करने के एक स्वर्णिम अवसर के रूप में प्रचारित किया। दक्षिण एशियाई देशों को आशा थी कि अपनी अर्थव्यवस्थाओं को खोलकर विदेशी पूंजी और टेक्नोलॉजी प्राप्त हो सकेगी जिससे तीव्र आर्थिक विकास हो सकेगा; लाखों बेरोज़गारों के लिए अधिक संख्या में रोज़गार के अवसर उत्पन्न होंगे और आयात के लिए और अधिक विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकेगी। ओ.डी.ए. और द्विपक्षीय ऋणों के विपरीत, जिन्हें चुकाना पड़ता है, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से सरकारों पर कर्ज़ का बोझ नहीं पड़ता। इस कारण ये धन प्राप्त करने का अधिक वांछित स्रोत हैं। 1993 से 1999 के बीच विकसित देशों ने 1,45,000 करोड़ अमेरिकी डॉलर से अधिक का निवेश विकासशील देशों में किया।[105] दक्षिण एशिया में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में दस गुना बढ़ोतरी हुई और यह 1990 और 1997 के बीच 46 करोड़ अमेरिकी डॉलर से बढ़कर 490 करोड़ अमेरिकी डॉलर हो गया। लेकिन विश्व स्तर पर प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की स्पर्धा में दक्षिण एशिया की लगातार उपेक्षा हो रही है। 1997 में दुनिया के कुल प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का 2.6 प्रतिशत दक्षिण एशिया में हुआ था जो इसका सर्वोच्च स्तर था। लेकिन सहस्राब्दि परिवर्तन के समय यह घटकर 1.26 प्रतिशत रह गया।[106] इसके विपरीत 1990 के पूरे दशक में चीन में सबसे अधिक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश हुआ (विभिन्न वर्गों में 25 से 38 प्रतिशत तक)। दक्षिण एशिया में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश सभी देशों में समान रूप से नहीं हुआ। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की दृष्टि से भारत इस क्षेत्र के देशों में सबसे चहेता देश रहा और क्षेत्र में समूचे निवेश का तीन–चौथाई यहीं हुआ। उदारीकरण के एक दशक के बावजूद, दक्षिण एशिया के अनुभव से यह स्पष्ट हो जाता है कि शुल्कों में कमी और व्यापारिक प्रतिबंधों को हटाने मात्र से विदेशी निवेशक स्वतः चले नहीं आते।

राष्ट्रमंडल के भारी कर्ज़दार गरीब देश[107]

देश	सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में कर्ज़ की मात्रा
कैमरून	75%
गैम्बिया	64%
घाना	78%
गयाना	उपलब्ध नहीं
मलावी	90%
मोज़ाम्बीक	33%
सिएरा लियोन	128%
तंज़ानिया	50%
युगांडा	16%
ज़ाम्बिया	179%

सारणी 8 सहस्राब्दि परिवर्तन के समय दक्षिण एशिया में ऋणग्रस्तता[108]

देश	कुल विदेशी ऋण (करोड़ अमेरिकी डॉलर में)		ऋणग्रस्तता रेटिंग	कुल ऋण का मूल्य (सकल घरेलू उत्पाद के रूप में बाहरी और आंतरिक ऋण)	कुल राजस्व के प्रतिशत के रूप में ब्याज़ का भुगतान
	1990	2000			
बांगलादेश	1,240	1,560	कम ऋणग्रस्त	40.1%	15.7%
भारत	8,362	10,036	कम ऋणग्रस्त	53.4%	38.2%
पाकिस्तान	2,066	3,209	*अत्यधिक ऋणग्रस्त*	79.1%	43%
श्रीलंका	586	906	कम ऋणग्रस्त	55.4%	14.1%

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

विषमताएं

एसएपीज़ वैश्वीकरण की विचारधारा के व्यावहारिक रूप का ज्वलन्त उदाहरण हैं। वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभावों से निपटने के लिए, ज़रूरी है कि इसकी प्रणालियों का खुलासा किया जाये। वैश्वीकरण का उदय विषमताओं की एक श्रृंखला के आधार पर हुआ है–जो बढ़ती गरीबी और असमानता का मूल कारण है।

सरकार और बाज़ार

सबसे पहली विषमता सरकार और बाज़ार के बीच संबंध में निहित है। 'मुक्त' बाज़ारों की विडम्बना यह है कि वे मुक्त नहीं हैं। उनका निर्माण और विकास राजनीतिक हस्तक्षेप–चाहे वह स्वैच्छिक हो या अभिप्रेरित–द्वारा किया गया है। एसएपीज़ के नाम पर राष्ट्रों पर लागू की गई अनेक शर्तों का लक्ष्य राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं का ' वैश्वीकरण' है ताकि उन्हें विदेशी निवेश और व्यापार के लिए खोला जा सके। मुक्त बाजारों को नए क्षेत्रों में प्रवेश करने और वहां फलने–फूलने के लिए राजनीतिक प्रभाव की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए वाणिज्यिक हित अपनी समृद्ध और शक्तिशाली शासन प्रणाली की अवपीड़क शक्तियों और डब्ल्यूटीओ तथा 'उत्तर अटलांटिक मुक्त व्यापार संघ (North American Free Trade Agreement - नाफ्टा) जैसे अंतर्राष्ट्रीय प्रबन्धों का सहारा लेते हैं। वर्तमान व्यापार इन्हीं द्वारा शासित है। गिने–चुने विकासशील देश ऐसे हैं, जिनके पास घरेलू उद्योगों को विकसित देशों के बाजारों में स्थान दिलाने की राजनीतिक क्षमता है। वैश्वीकरण सभी वाणिज्यिक हितों के लिए समान रूप से काम नहीं करता। खासकर विकसित देशों के संरक्षित बाज़ार उनकी मुक्त बाज़ार की परिकल्पना को झुठलाते हैं।

इसके साथ ही सरकार बहु–राष्ट्रीय निगमों की अनिवार्य शर्तों और उनके प्रभाव से कमज़ोर पड़ जाती हैं। एसएपीज़ की शर्तों के रूप में निजीकरण और उदारीकरण से अधिक 'स्वायत्त' बाज़ार प्रणाली सामने आती है, जिसमें सरकार के अधिकारों का क्षेत्र कम हो जाता है और निजी क्षेत्र के अधिकारों में उतनी ही बढ़ोतरी हो जाती है। निवेश और संचालन की शर्तों के आधार पर कम्पनियों को सरकारों के साथ समझौते करने के व्यापक अधिकार प्राप्त हैं और वे सरकार की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक नीतियों से संबंधित फैसलों को प्रभावित करने की क्षमता हासिल कर चुकी हैं। अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा की शर्तों के कारण कम्पनियाँ को सार्वजनिक नीतियों और पद्धतियों पर हावी होने का मौका मिलता है। चूंकि ये कम्पनियां बेरोकटोक विश्वभर में कहीं भी आ–जा सकती हैं, इसलिए सरकारों को अन्य देशों के मुकाबले में निवेशकों को आकर्षित करने के लिए अनेक उपायों का सहारा लेना पड़ता है। उदाहरण के लिए, करों में कटौती, व्यापार संबंधी पाबंदियों को हटाना इत्यादि, पर्यावरण संबंधी मानदंडों में कमी लाना और कर्मचारी संगठनों पर प्रतिबंध लगाना। इससे राज्य के राजस्व में क्षति होना स्वाभाविक है, जिसका अर्थ है गरीबी उन्मूलन के लिए खर्च किए जाने वाले संसाधनों में पहले की तुलना में कमी। कई देशों में कल्याण कार्यों–जहां वे समाप्त नहीं हुए हैं–का निजीकरण किया गया है और सरकार के अनेक महत्वपूर्ण कार्य निजी क्षेत्र को स्थानांतरित कर दिए गए हैं।

सरकारों से अधिकारों का हस्तांतरण निगमों और अन्य विश्व–संस्थानों में होने से लोकतंत्र भी कमज़ोर पड़ गया है। चूंकि नीतियां, या तो शर्तों के रूप में साफ–साफ अथवा विश्व बाजारों के तर्क के प्रभाव के रूप में बार–बार सरकारों पर लागू की जाती हैं, अतः राज्य मज़बूरन अंतर्राष्ट्रीय पूंजी के दलाल बन जाते हैं और अक्सर उन्हें अपने नागरिकों की इच्छाओं के विपरीत फैसले करने पड़ते हैं। वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय पूंजीपति अक्सर सरकार के नागरिकों को दबाने के रवैये पर निर्भर रहते हैं ताकि उनके हितों की रक्षा हो सके। प्रभुसत्ता या आत्म–निर्णय के इस्तेमाल का केन्द्र बिन्दु अकेले राज्य या सरकार नहीं रह गई है। अब नागरिक सरकार को उत्तरदायी ठहराने की स्थिति में नहीं रहे, क्योंकि सरकारों में अब इतनी क्षमता नहीं रह गई है कि वे नागरिकों की मांगों को पूरा कर सकें। दूसरी ओर, नागरिकों के जीवन पर 'गैर–राज्य कर्ताओं (non-state actors) का अधिक प्रभाव पड़ता है।

राज्य की शासन–शक्ति के पहलुओं की जगह ले रहे ये निगम और संस्थान स्वयं में लोकतांत्रिक नहीं हैं। इनका संचालन खास हित–समूहों की ओर से कार्यकारियों या नौकरशाहों द्वारा किया जाता है। इसका एक अच्छा उदाहरण उस समय सामने आता है जब कोई राष्ट्र किसी क्षेत्रीय आर्थिक संगठन में शामिल होता है (जो खुद भी वैश्वीकरण की उपज है)।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

कर्ज़ में डूबी राज्य सरकारें

भारतीय संविधान में केन्द्र और राज्य सरकारों को नागरिकों के कल्याण के लिए कार्य करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। इस तरह के कार्यों में खाद्य सुरक्षा से लेकर शिक्षा और स्वास्थ्य, स्वच्छता और विद्युत तथा स्वच्छ पेयजल की आपूर्ति शामिल हैं। केन्द्र और राज्य, दोनों ही प्रशासनिक तंत्र के संचालन की लागत जुटाने तथा लोक कल्याण के कार्यों पर होने वाले खर्च को पूरा करने के लिए कर लगा सकते हैं और भारतीय रिज़र्व बैंक और अन्य वित्तीय संस्थाओं से ऋण ले सकते हैं। लेकिन हाल के वर्षों में राज्य सरकारों के पास लोक कल्याण के कार्यों पर खर्च करने के लिए धनराशि लगातार कम होती जा रही है और वे खर्च चलाने के लिए बैंकों तथा मुद्रा बाज़ार से अधिक मात्रा में कर्ज़ ले रही हैं। हिमाचल प्रदेश जैसे कुछ राज्यों को तो कर्मचारियों के वेतन के भुगतान के लिए कर्ज़ लेना पड़ रहा है।[109] राज्यों के कर राजस्व का काफी बड़ा हिस्सा पुराने ऋणों के भुगतान में खर्च हो जाता है। परिणामस्वरूप, उनके पास विकास कार्यक्रमों पर खर्च करने के लिए बहुत कम धन बचता है। राज्यों के बजट में कुल घाटा भारत के सकल घरेलू उत्पाद के 4.6 प्रतिशत के बराबर है। (राज्यवार ब्यौरा देखिए) अगर सरकारी खर्च कम करने के लिए आपात् उपाय नहीं किये जाते तो बहुत से राज्यों के ऋण के जाल में फंस जाने की आशंका है–क्योंकि पुराने ऋणों को चुकाने के लिए और अधिक कर्ज़ लेने पड़ेंगे और यह सिलसिला चलता रहेगा।

सारणी–9 राज्यों में वित्तीय घाटा: 2002–2003 के बीच[110]

राज्य	घाटा (करोड़ रुपये)	राज्य	घाटा (करोड़ रूपये)
पश्चिम बंगाल	11,315.2	असम	2,054.2
गुज़रात	9,752.5	हिमाचल प्रदेश	1,859.9
उत्तरप्रदेश	9,744.2	झारखंड	1,782.5
तमिलनाडु	8,205	दिल्ली (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र)	1,764.6
महाराष्ट्र	7,997.4	जम्मू–कश्मीर	1,612.8
आंध्रप्रदेश	7,499.3	छत्तीसगढ़	1,450.6
राजस्थान	6,956.5	त्रिपुरा	631.8
कर्नाटक	5,839.1	गोआ	458
पंजाब	4,969.8	मणिपुर	287
बिहार	3,576.7	मेघालय	272.2
उड़ीसा	3,570	नागालैंड	262.8
मध्यप्रदेश	3,148.1	मिज़ोरम	137.1
केरल	2,669.5	अरुणाचल प्रदेश	78.2
हरियाणा	2,617.7	सिक्किम	27.9
उत्तरांचल	2,306.7		
		कुल घाटा	1,02,847.6 करोड़ रुपये

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

धन कहाँ है ?

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की संख्या, जो 1970 में 7000 थी, सहस्राब्दि परिवर्तन तक बढ़कर 50,000 से अधिक हो गयी है। अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में 70 प्रतिशत से अधिक व्यापार बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा किया जाता है। इसके एक तिहाई हिस्से का बहाव तो इन्हीं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बीच होता है। विश्व स्तर पर विचार करें तो विश्व के पांच सबसे बडे निगमों की कुल वार्षिक आमदनी दुनिया के 100 सबसे गरीब देशों के कुल राजस्व से अधिक है। सहस्राब्दि परिवर्तन के समय चोटी के 500 बहुराष्ट्रीय निगमों की कुल बिक्री विश्व की सकल आय का 47 प्रतिशत थी, लेकिन इनमें विश्व की श्रम शक्ति के केवल 1.59 प्रतिशत को ही रोज़गार मिला था।[111] दूसरे शब्दों में, कम से कम लोग अधिक से अधिक पैसा कमा रहे हैं।

कई बहुराष्ट्रीय कम्पनियां तो दक्षिण एशियाई देशों की कुल आमदनी (सकल घरेलू उत्पाद - Gross Domestic Product) या भारत के राज्यों के राज्य घरेलू उत्पाद (State Domestic Product) से भी अधिक धन कमा रही हैं। सहस्राब्दि परिवर्तन के समय एक्सॉन मोबिल की आमदनी भारत के सकल घरेलू उत्पाद के सातवें हिस्से के बराबर थी। जनरल मोटर्स ने इसी अवधि में बांगलादेश में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के कुल मूल्य से अधिक की आमदनी कमायी। आई.बी.एम., सोनी, फोर्ड, टोयोटा और ग्लैक्सो स्मिथक्लैन में से प्रत्येक कम्पनी की आमदनी श्रीलंका और भारत के कई राज्यों में वस्तुओं और सेवाओं की कुल लागत से अधिक थी। 2001 में आमदनी के लिहाज़ से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों, दक्षिण एशियाई देशों और भारतीय राज्यों की तुलनात्मक स्थिति के लिए कृपया बॉक्स देखें।[112]

देश/राज्य/ बहुराष्ट्रीय कम्पनी	जी डी पी / एस डी पी/बहुराष्ट्रीय कम्पनी की आमदनी (करोड़ अमेरिकी डॉलर में)	देश/राज्य/ बहुराष्ट्रीय कम्पनी	जी डी पी / एस डी पी/बहुराष्ट्रीय कम्पनी की आमदनी (करोड़ अमेरिकी डॉलर में)
भारत	45,700	तमिलनाडु	2,565
एक्सॉन मोबिल	6,300	*सोनी*	2,000
पाकिस्तान	6,200	*मित्सुबिशि*	2,000
जनरल मोटर्स	5,600	कर्नाटक	1,971
महाराष्ट्र	4,747	गुज़रात	1,950
बांगलादेश	4,700	*होंडा मोटर्स*	1,800
फोर्ड मोटर्स	4,400	*तोशिबा*	1,800
डाइमलर क्रायस्लर	4,200	*गलैक्सो स्मिथक्लैन*	1,700
जनरल इलेक्ट्रिक	3,900	श्रीलंका	1,630
टोयोटा मोटर्स	3,800	राजस्थान	1,394
उत्तरप्रदेश	3,321	मध्यप्रदेश	1,334
सीमेन्स	3,200	केरल	1,314
तमिलनाडु	2,744	पंजाब	1,268
आई.बी.एम	2,700	बिहार	871
पश्चिम बंगाल	2,674	उड़ीसा	641
आन्ध्रप्रदेश	2,592	असम	560

जी डी पी : सकल घरेलू उत्पाद

एस डी पी : राज्य घरेलू उत्पाद

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

समृद्धि के बीच गरीबी : भारत में संपत्ति संबंधी असमानता[113]

- विश्व बैंक के अनुमान के अनुसार भारत में 35 प्रतिशत लोग यानी 36 करोड़ नागरिक एक डालर दैनिक से कम आमदनी में गुज़ारा करते हैं। अगर तर्क के लिए ही यह मान लिया जाए कि उनमें से प्रत्येक हर रोज़ कम से कम एक अमेरिकी डालर (48 रुपया) कमाता है तो इन लोगों की कुल वार्षिक आमदनी 6.3 लाख करोड़ रुपये होगी।

या

- योजना आयोग के अनुमानों के अनुसार सहस्राब्दि परिवर्तन के समय देश की एक चौथाई से अधिक आबादी, यानी 26 करोड़ नागरिक, गरीबी–रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे थे। ये लोग कुल मिलाकर करीब 91,000 करोड़ रुपये की वार्षिक आमदनी कमा रहे थे।

अब इस पर विचार कीजिए :

- वर्ष 2003 के अंत तक भारत के 125 करोड़पतियों की कुल आमदनी 1.20 लाख करोड़ रुपये होने का अनुमान लगाया गया था। दूसरे शब्दों में, 0.00001 प्रतिशत आबादी के पास देश के सबसे गरीब 25 प्रतिशत लोगों की कुल संपत्ति से अधिक धन–दौलत थी।
- वर्ष 2002 में सूचना टेक्नोलॉजी क्षेत्र से धन्ना सेठ बने 23 करोड़पतियों की कुल संपत्ति 46,675 करोड़ रुपये की थी। सूचना टेक्नोलॉजी उद्योग को 1991 में शुरू किये गये आर्थिक सुधार कार्यक्रम का सबसे उल्लेखनीय लाभ मिला।
- सन् 2001 में 45,000 भारतीयों के पास 5 करोड़ रुपये से अधिक की संपत्ति थी। सन् 2002 में 5,000 और लोग इन करोड़पतियों में जुड़ गये।
- वर्ष 2002 में भारत के सबसे धनी नागरिक विप्रो कम्पनी के अध्यक्ष श्री अज़ीम प्रेमजी की संपत्ति 31,411 करोड़ रुपये आंकी गयी थी। लेकिन 2003 में शेयर बाज़ार में हुई उथल–पुथल के कारण उनकी संपत्ति की कीमत 12,448 करोड़ रुपये गिर गई थी।

क्षेत्रीय संगठनों में पूंजी–हित आमतौर पर अन्य सभी समूहों से ज्यादा अधिकार पा लेते हैं, जिससे लोकतंत्र की 'पराजय' होती है। कंपनी क्षेत्र बड़ी संख्या में हिस्सेदारों से सम्पर्क करता है–इनमें शेयर धारक, मज़दूर, उपभोक्ता, उप–ठेकदार, उस देश की सरकार और जन समुदाय शामिल हैं। इस क्षेत्र ने इन सभी को बड़े प्रभावी ढंग से अधिकारहीन और अनेकों को कमज़ोर कर दिया है।

हालांकि शेयर धारक और उपभोक्ता ऐसे समूह हैं, जिनके प्रति बहुराष्ट्रीय निगम सीधे उत्तरदायी होते हैं, लेकिन काफी हद तक ये समूह भी कम्पनी के व्यवहार या नियंत्रण प्रबन्ध पर कारग़र ढंग से निगरानी नहीं रख पाते। कॉर्पोरेट गतिविधियां भी शेयरधारकों और

सबसे धनी भारतीय

व्यक्ति और कम्पनी	अनुमानित संपत्ति
मुकेश डी. अम्बानी और अनिल डी. अम्बानी, *रिलायंस इंडस्ट्रीज़*	23,588 करोड़ रुपये
अज़ीम प्रेमजी, *विप्रो*	18,964 करोड़ रुपये
मलविन्दर सिंह और शिविन्दर सिंह, *रेनबैक्सी लेबोरेटरीज़*	5,086 करोड़ रुपये
सुनील मित्तल, *भारती टेली–वेंचर्स*	5,000 करोड़ रुपये
शिव नाडार, विजय थडानी और राजेन्द्र पवार, *एच. सी. एल. टेक्नोलॉजी*	4,299 करोड़ रुपये
दिलीप शंघवी, *सन फार्मास्यूटिकल्स*	3,027 करोड़ रुपये
कुमार मंगलम बिड़ला, *ग्रासिम*	2,737 करोड़ रुपये
सुभाष चन्द्र, *ज़ी टेलीफिल्म्स*	2,566 करोड़ रुपये
कर्सनभाई पटेल, *निरमा*	2,169 करोड़ रुपये
डा0 अंजी रैड्डी, *डा0 रैड्डीज़ लैब्स*	2,132 करोड़ रुपये
कुल	69,568 करोड़ रुपये

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

उपभोक्ताओं की ही तरह बिखरी हुई हैं। इससे उनके लिए फैसलों और गतिविधियों की जानकारी प्राप्त करना तथा संयुक्त या कारग़र कार्रवाई करना संभव नहीं हो पाता। 'पेंशन निधि' 'क्रॉस–हाल्डिंग्स' और 'पोर्टफोलियो' के माध्यम से शेयर खरीदने वाले अन्य शेयरधारकों को तो शायद यह भी न मालूम हो कि उन्होंने कौनसी कम्पनियों में निवेश किया है। बड़े और छोटे सब–कांट्रेक्टर्स किसी खास निगम पर इतने आश्रित हो जाते हैं कि वे अक्सर कानूनी या स्वीकार्य मानदंडों का उल्लंघन करने वाली कार्यपद्धति अपनाने पर बाध्य हो जाते हैं। निगमों ने वेतन कम कर दिए हैं और सामाजिक सुरक्षा तथा कार्यस्थल पर सुरक्षा के अनेक मानदंडों को तिलांजलि दे दी है–खासकर विकासशील देशों में–जहाँ मज़दूरों के पास अपनी आवाज़ उठाने का कोई साधन नही है। उत्पादक संघों के गठन से उपभोक्ताओं के विकल्प और भी कम हो गए हैं।

निगमों और सरकारों के बीच मेलजोल, रिश्वतखोरी और विशिष्ट वर्ग के स्वार्थों को लेकर मिली भगत से गरीबों की तकलीफें और भी बढ़ जाती हैं। राज्य अक्सर विकास के नाम पर पक्षपातपूर्ण ढंग से अनुचित योजनाओं को मंजूरी देता है, जिससे लाखों लोग विस्थापित हो जाते हैं। प्रक्रियाओं पर निगरानी नही रखने दी जाती। जिन मानदंड़ों के आधार पर बहुमूल्य रियायतें दी गई, उन्हें सार्वजनिक करने से इंकार कर दिया जाता है। प्रभाव संबंधी आंकड़े प्रकाशित करने पर आपत्ति लगा दी जाती है। कानून तथा व्यवस्था बनाए रखने के नाम पर दमनकारी पद्धतियां अपनायी जाती हैं ताकि कम्पनियों द्वारा लोगों और संसाधनों का शोषण किया जा सके। इसका ज्वलन्त उदाहरण नाइजीरिया में ओगोनिलैंड में तेल उद्योग में देखा जा सकता है। ये पद्धतियां सरकारी मशीनरी को नागरिकों से और दूर करती हैं और इससे लोकतंत्र की नींव कमज़ोर पड़ती है।

पूंजी और श्रम

वैश्वीकरण में दूसरी मूलभूत विषमता पूंजी और श्रम के बीच में है। पूंजी का प्रवाह विश्वभर में मुक्तरूप से जारी है–डॉलर और अन्य प्रमुख मुद्राओं का अरबों का विनिमय हर रोज होता है। श्रम के मामले में ऐसी गतिशीलता का अभाव है। कहा जाता है कि जब पूंजी, उद्योग और विनिर्माण स्वयं चलकर मज़दूर के पास आ रहे हैं, तो विश्व में श्रम के मुक्त प्रवाह की आवश्यकता नहीं है। किन्तु इसमें इस तथ्य

मानवाधिकारों में निवेश

"निगमों को इस बात के लिए प्रेरित किया जा सकता है कि उपभोक्ताओं द्वारा नैतिक पद्धतियों की मांग करने पर उन्हें अधिक जिम्मेदारीपूर्ण कार्रवाई करनी चाहिए ताकि लोगों के मानवाधिकारों को पोषित किया जा सके।"

ब्रिटेन के एक प्रमुख 'पेंशन निधि फ्रेंड्स प्रोविडेंट ने 120 अरब पौंड के कारोबार वाली विशाल दवा कम्पनी, ग्लैक्सो–स्मिथक्लिन (जी एस के) को विकासशील देशों के उपभोक्ताओं के लिए अनिवार्य दवाएं कम कीमत पर उपलब्ध कराने के लिए 'ऑक्सफैम" के नेतृत्व में चलाए गए अभियान के पीछे अपनी पूरी ताकत लगा दी।

वर्तमान में लोगों के जेहन में जिस मुद्दे के प्रति सर्वाधिक चिन्ता है, वह है एच आई वी/एड्स महामारी जिसने अफ्रीकी देशों में तबाही मचा रखी है और दक्षिण अफ्रीका की सरकार बड़ी दवा कम्पनियों से कुछ महंगी दवाएं खरीदने की बजाय अपनी जनता को कुछ 'सजातीय (generic) दवाएं उपलब्ध कराने के प्रयास कर रही है।

फ्रेंड्स प्रोविडेंट की पेंशन निधि का प्रबन्ध करने वाली फ्रेंड्स आइवरी साइम्स के पास 30 अरब पौंड की राशि प्रबन्ध–अधीन हैं और कम्पनी ने 1 अरब पौंड का निवेश जी एस के में किया है। कम्पनी के क्रेग मैकेंजी का कहना है: "अगर करोड़ों अफ्रीकी उपचार योग्य बीमारियों के कारण मर रहे हैं और वह भी सिर्फ इसलिए कि दवा कम्पनियां अधिक मूल्य वसूल कर रही हैं, तो आपके प्रतिष्ठान की ख्याति को गम्भीर खतरा है।"[114]

फ्रेंड्स ने एक नैतिक निवेश नीति वक्तव्य जारी किया है जो निवेशकों को उन कम्पनियों में निवेश से रोकता है जो मुनाफे के लिए अपनी दवाओं के ऊंचे दाम तय करती हैं। इस तरह की नीति जी एस के जैसी कम्पनियों में निवेश संभावनाओं को कम करती है और इस तरह सामाजिक दृष्टि से ज़िम्मेदार पद्धतियों को प्रोत्साहित करती है। अन्य संस्थागत निवेशक ऐसे कदमों का अनुसरण कर रहे हैं। जी एस के ने हाल ही में 63 देशों में दवाओं के मूल्यों में कमी की घोषणा की है।[115]

cyan black

बंधुआ मज़दूरी का समर्थन – बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की शैली

हिन्दुस्तान लीवर या मोन्सान्टो जैसी किसी बहुराष्ट्रीय कम्पनी में काम करके आप कितना कमा पायेंगे? शायद आपको छह–अंकों में वेतन मिले, कम्पनी लीज़ पर शानदार बंगला रहने को मिले, इधर–उधर आने–जाने के लिए शोफ़र द्वारा चलाई जाने वाली कार मिले और व्यापारिक ग्राहकों का पांच सितारा होटल में आतिथ्य–सत्कार करने के लिए आपका खर्चा–खाता हो। पर हो सकता है कि आप गलत हों। फिर से सोचिये। संभावना तो यह भी है कि आप रोज़ाना 20 रुपये से भी कम कमा रहे होंगे, गायों के तबेले में सो रहे होंगे या खुले खेतों में बने अस्थायी तम्बुओं में रह रहे होंगे या सिरदर्द, सांस की तकलीफ और दौरा पड़ने जैसी बीमारी से ग्रस्त होंगे।

6–14 वर्ष तक की आयु के 53 हज़ार से अधिक बच्चे, जिनमें से अधिकतर लड़कियां होती हैं, आन्ध्रप्रदेश में महबूबनगर और कर्नूल जिलों के खेतों में रोज़ाना 8–13 घंटे कार्य करते हैं। इन्हीं खेतों से हिन्दुस्तान लीवर, मैहिको–मोन्सान्टो, एडवेन्टा, और सिंजेन्टा इंडिया जैसी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को कपास का संकर बीज उपलब्ध होता है।[116] ये बच्चे सुबह 5 बजे से शाम 6 बजे तक खेतों में काम करते हैं। प्रवासी मज़दूरों के बच्चे तो इससे भी अधिक समय तक काम करते हैं। अधिक मेहनत से और अधिक समय तक काम करने के लिए प्रोत्साहन के तौर पर कभी–कभार बिस्कुट या चॉकलेट का टुकड़ा दे दिया जाता है या कुछ और उदारता दिखाते हुए महीने में दो बार स्थानीय सिनेमा हाल में फिल्म दिखा दी जाती है। एंडोसल्फान, मोनोक्रोटोफॉस और साइपरमेथ्रिन जैसे ज़हरीले कीटनाशकों के सम्पर्क में आने से इन बच्चों के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ता है और स्वास्थ्य संबंधी समुचित देखभाल भी उन्हें उपलब्ध नहीं होती।

इन बाल श्रमिकों में से अधिकतर अपने माता–पिता द्वारा लिए गए कर्ज़ अदा करने के लिए साल–दर–साल उन्हीं खेतों में मज़दूरी करने वापस आ जाते हैं। अनुमान है कि 2 लाख से अधिक बच्चे कपास बीज उद्योग में बंधुआ मज़दूर बनाए गये हैं। यह भारत में बाल मज़दूरी पर आधारित सबसे बड़ा उद्योग बनता जा रहा है। इन बच्चों में से तीन–चौथाई दलित, आदिवासी, और अन्य पिछड़े वर्गों के हैं। इनमें से 60 प्रतिशत से अधिक स्कूली शिक्षा पूरी न कर पाने वाले बच्चे होते हैं जबकि एक चौथाई स्कूली शिक्षा से पूर्णरूप से वंचित हैं। दूसरी ओर, अधिकतर ज़मींदारों के बच्चे स्कूल जाते हैं और अपने खेतों में कभी काम नहीं करते। प्रौढ़ मजदूरों से केवल खेत जोतने, बीज बोने और कीटनाशक छिड़कने जैसे काम कराये जाते हैं।

आन्ध्रप्रदेश में कपास बीज आपूर्ति का 20 प्रतिशत बहुराष्ट्रीय निगमों के नियंत्रण में है जो भारत में 1990 के दशक में व्यापारिक उदारीकरण की नीति का नतीजा है। कपास के पौधों में हाथों से परागण के ज़रिए संकर बीजों का उत्पादन किया जाता है। इस तरह के बीज केवल एक बार इस्तेमाल किये जा सकते हैं, इसलिए इन बीजों की मांग को पूरा करने के लिए हर साल बीज पैदा किये जाते हैं। अधिकतर बहुराष्ट्रीय कम्पनियां इस बात से इनकार करती हैं कि वे बाल श्रमिकों से मज़दूरी कराती हैं। सरसरी तौर पर तो यह बात सही लग सकती है क्योंकि भारतीय कानून के अनुसार विदेशी कम्पनियां यहाँ ज़मीन नहीं खरीद सकतीं। बच्चे जिन खेतों में काम करते हैं उन पर न तो बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का मालिकाना हक होता है और न उन्होंने इन्हें पट्टे पर लिया होता है। इस तरह तकनीकी दृष्टि से बहु राष्ट्रीय कम्पनियां खुद बाल–मजदूरों को काम पर नहीं रखतीं। बजाय इसके वे स्थानीय किसानों द्वारा उगाये गये बीज, बिचौलियों के ज़रिए खरीदती हैं। इन बिचौलियों को सम्मानसूचक भाषा में "सीड ऑर्गनाइज़र" कहा जाता है जो किसानों के लिए बीजों का आपूर्ति मूल्य तय करते हैं। ये किसान बाल श्रमिकों के माता–पिता के साथ उनकी मज़दूरी तय करते हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अपने उत्पादों को सस्ते दाम पर बेचने के लिए आपूर्ति मूल्य कम से कम रखने का प्रयास करती हैं। स्थानीय किसान वयस्क मज़दूरों को काम पर नहीं रखते क्योंकि बाल मज़दूर सस्ते में मिल जाते हैं। बच्चों को मज़दूर के रूप में रखकर किसान मज़दूरी में 30–35 प्रतिशत की बचत कर लेते हैं। धनी किसान, बिचौलिए और बहुराष्ट्रीय कम्पनियां सभी इस फायदे से खुश है। अगर किसी को नुकसान हो रहा है तो वे हैं, बाल मज़दूर जिनके भविष्य की कीमत पर सबका कारोबार फल–फूल रहा है।

की अनदेखी की गई है कि अवसरवादी रोज़गार के ये छोटे 'अंतःक्षेत्र' (enclaves) हैं, जिन्हें बिना श्रमिकों की चिन्ता किए हटाया जा सकता है और अन्य स्थानों पर ले जाया जा सकता है। पूंजी का उदारतापूर्वक स्वागत किया जाता है, चाहे वह कहीं भी जाये, किन्तु प्रवासी श्रमिकों के बारे में ऐसा नहीं है। मेज़बान देशों में उन पर बहुत सारे कानूनी प्रतिबंध होते हैं और उनके साथ व्यवहार के स्तर पर भेदभाव किया जाता है। पूंजी

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

को एक बटन भर दबाकर एक देश से दूसरे देश में ले जाया जा सकता है और कम्पनियां अपनी व्यापार नीतियों के अनुकूल एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाने का फैसला कर लेती हैं। इसलिए कम्पनियां मजदूरों की स्वतंत्रता खरीद लेती हैं और विनिवेश की धमकी देकर या तो स्वयं मजदूरों द्वारा या सरकार द्वारा श्रमिकों की न्यायपूर्ण मांगों को अपने अनुकूल और भी उदार करा लेती हैं। अनेक देशों में समकालीन वैश्वीकरण की प्रक्रिया 'मुक्त' आर्थिक क्षेत्रों और विदेशी निवेश आकर्षित करने के लिए अनियमित बाजारों के विदेशी अन्तःक्षेत्रों की स्थापना के साथ शुरू हुई। इन अन्तःक्षेत्रों में न्यूनतम वेतन और संगठन बनाने के अधिकार के बारे में संरक्षणात्मक श्रम कानूनों को समाप्त कर दिया गया या उनमें संशोधन करके सत्ता–संबंध निगमों के पक्ष में कर दिया गया। श्रम के मुकाबले पूंजी, वाणिज्य और निगमों ने विश्वस्तर पर नीतियों और कार्यनीतियों को संगठित और समन्वित करने में सफलता प्राप्त की है। उन्होंने अन्य संस्थाओं को बाहर रखने और प्रतियोगी क्षमता, पारस्परिक संबंधों और सरकारों तथा अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय और व्यापक संगठनों पर प्रभाव कायम रखने के लिए वाणिज्य मंडलों, उत्पादक–संघों का सहारा लिया है। मज़दूर अक्सर राष्ट्रीय सीमाओं में सीमित रहते हैं और अनुचित शर्तें मानने के लिए मज़बूर हो जाते हैं। इससे उचित मज़दूरी, पेंशन और सुरक्षित कार्यस्थितियों की मांग करने की उनकी क्षमता कमज़ोर पड़ती है।

बाज़ार और समुदाय

तीसरी विषमता बाजारों और समुदायों के बीच है क्योंकि आने वाले वर्षों में विश्व अर्थव्यवस्था के समक्ष सबसे बड़ा खतरा यह सुनिश्चित करने का है कि अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक एकीकरण से घरेलू स्तर पर सामाजिक विघटन को बढ़ावा न मिले। बीसवीं सदी में बाज़ार की पहुंच और विफलताओं की परिणति पश्चिम में एक वर्ग समझौते (class compact) के रूप में हुई, जिससे अंततः सामाजिक लोकतांत्रिक व्यवस्था (social democracy) का विकास हुआ। इस समझौते की सार–वस्तु राजनीतिक और लोकतांत्रिक रूप से नियंत्रित बाज़ार था जिसमें न्यूनतम वेतन और सुरक्षित कार्यस्थितियों सहित मज़दूरों के अधिकार और उनकी सुरक्षा को मान्यता प्रदान की गई। सरकार द्वारा बुनियादी सेवाएं और सुरक्षाएं प्रदान की गईं और निगमों के बाहरी अस्तित्व और कामकाज को विनियमित किया गया। विभिन्न सामाजिक और आर्थिक समूहों के हितों के बीच मध्यस्थता करने और सामाजिक सम्बद्धता बनाए रखने के लिए संस्थानों और परंपराओं की स्थापना की गई।

जिस गति से वैश्वीकरण हो रहा है, उससे जहां एक तरफ वित्तीय अधिकारों, प्रौद्योगिकी क्षमता और बौद्धिक सम्पदा पर स्वामित्व में ऐतिहासिक अभिवृद्धि हुई है, वहीं दूसरी तरफ, विकासशील देशों की सरकारों की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति कमज़ोर पड़ी है और उनकी सौदेबाज़ी करने की क्षमता में कमी आयी है, तथा समाज की स्थिरता को लेकर इसके कई गंभीर नतीजे सामने आये हैं।

पहला यह कि बाज़ार के फैलती हुई सीमाओं ने उन समुदायों को –जिनका अब तक प्राकृतिक संसाधनों पर स्वायत्त नियंत्रण रहा है– निगमों के मुनाफे के लालच का शिकार बना दिया है। राष्ट्रीय कानून से मुक्त होने के कारण विश्वव्यापी बाज़ार समुदायों को अधीन बनाता है। इसका नतीजा अधिक सामाजिक ध्रुवीकरण, सामाजिक प्रतिबद्धताओं के क्षय और विघटन के रूप में सामने आता है। निगमों ने समुदायों की सम्बद्धता और एकता भंग कर दी है क्योंकि उनके सदस्यों को अलग–थलग करके संसाधनों पर नियंत्रण कर लिया गया है। वे अक्सर लोगों के वातावरण को बरबाद कर देते हैं और बदले में कुछ नहीं देते। इसके जाने–माने उदाहरण पापुआन्यूगिनी में 'मुख्यभूमि' पर बोगैंविल ताम्रखान और ऑक टेडी खान के दिए जाते रहे हैं। कुछ विशिष्ट स्थानों पर, जैसे बड़े बाग़ान या 'औद्योगिक स्थलों (कभी–कभी उन्हें 'कम्पनीटाउन' भी कहा जाता है) पर निगमों ने सरकार या प्रशासन के अनेक कार्य अपने हाथ मे ले लिए हैं और उनका लोगों के जीवन पर व्यापक प्रभाव है। लोगों के संसाधनों को निगमों द्वारा हथिया लेने से उनकी जीवन पद्धति का आधार नष्ट हो जाता है और उनकी जीविका के साधन छिन जाते हैं। सामुदायिक संपत्ति संसाधन समुदायों के नियंत्रण से निरन्तर बाहर होते जा रहे हैं और उन्हें व्यक्तिगत संपत्ति में तब्दील किया जा रहा है। यह अनेक जनजातीय और आदिवासी समुदायों का अनुभव रहा है। बड़ी परियोजनाओं से अक्सर समुदाय के समुदाय विस्थापित हो जाते हैं। वे कमज़ोर हो कई समस्याओं के शिकार बन जाते हैं और इन समस्याओं पर उनका कोई नियंत्रण नहीं होता।

दूसरा यह कि विनिमय और खरीद फरोख्त की स्वतंत्रता पर, जो बुनियादी स्वतंत्रता का अभिन्न अंग है और जिसका लोगों के लिए विशेष महत्व होता है, विशेषाधिकार प्राप्त कम्पनियों द्वारा हमला किया गया है और उसे क्षति पहुंची है। कृषि, उत्पादन, व्यापार और सेवा क्षेत्रों का बाज़ार के लिए संगठन निजी स्वामित्व के 'समरूपीकृत' (homogenised) मॉडलों पर निर्भर है। इसका आधार वेतनभोगी मज़दूर प्रणाली है और यह पूरी व्यवस्था भारी उत्पादन तथा भारी खपत प्रक्रियाओं पर आधारित है। इन हालातों में, भारी पैमाने पर उत्पादन

cyan black

बारिश की नीलामी : बोलिविया में निजीकरण का अनुभव

एक ओर जहाँ दक्षिण एशियाई देशों की सरकारें जंगल, झील और चारागाह जैसे साझा संसाधनों को मिट्टी के मोल निजी उपक्रमों को देने में लगी हैं, वहीं बोलिविया में कोचाबाम्बा शहर ने निजीकरण की इस प्रक्रिया का विरोध किया है और लोकतांत्रिक तथा शांतिपूर्ण तरीकों से पानी पर फिर से लोगों का नियंत्रण स्थापित किया है।

दक्षिण अमेरिका के देश बोलिविया के सबसे बड़े शहर कोचाबाम्बा की आबादी 10 लाख से अधिक है। इनमें से 60 प्रतिशत शहरी क्षेत्रों में रहते हैं। पिछली आधी शताब्दी से इस शहर के लोगों को पानी की किल्लत से जूझना पड़ रहा था। हाल तक सरकार ने कोचाबाम्बा के लेागों के लिए उचित दर पर जल आपूर्ति की व्यवस्था कर रखी थी। इससे ग्रामीण क्षेत्रों के सब्ज़ी उगाने वाले किसानों तथा कोचाबाम्बा के शहरी गरीबों को जल आपूर्ति हो रही थी। 1998 में जब बोलिविया ने समग्र आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए संवर्धित संरचनात्मक समायोजन सुविधा (ESAF) अपनायी तो विश्व बैंक के 2.5 करोड़ अमेरिकी डॉलर के ऋण के साथ कोचाबाम्बा में जल सेवा के निजीकरण की शर्त भी जोड़ दी। जल आपूर्ति प्रणाली एक अमेरिकी कम्पनी बैकटेल को बेच दी गयी जिसने विभिन्न श्रेणियों के उपभोक्ताओं के लिए पानी के शुल्क में 35 से 300 प्रतिशत तक की बढ़ोतरी कर दी। जिस देश में न्यूनतम मज़दूरी का राष्ट्रीय औसत 65 अमेरिकी डॉलर प्रतिमाह है, वहाँ मज़दूर परिवारों को अपनी आमदनी का एक तिहाई भाग पानी खरीदने पर खर्च करने को मजबूर होना पड़ा।

बोलिविया की संसद ने एक नया कानून पारित कर पानी को वाणिज्यिक वस्तु घोषित कर दिया। यहाँ तक कि गरीब से गरीब लोगों के लिए भी सार्वजनिक कुओं और नदियों जैसे पानी के परम्परागत स्रोतों से पानी लेने के लिए परमिट लेना आवश्यक हो गया। किसानों पर परमिट के बिना वर्षा जल के संचय के लिए टैंक बनाने पर पाबंदी लगा दी गयी। नये कानून और जल आपूर्ति की सुविधा उपलब्ध कराने वाली निजी कम्पनी के साथ हुए समझौते के चलते सरकार सभी नागरिकों को पानी की आपूर्ति सुनिश्चित करने की अपनी ज़िम्मेदारी से मुक्त हो गयी।

1985 में बोलिविया में निजीकरण कार्यक्रम की शुरूआत के बाद सभी प्रमुख सार्वजनिक सेवाओं, जैसे सड़क परिवहन, रेलवे, विमान–सेवा और दूरसंचार का एक–एक करके निजीकरण कर दिया गया। जमीन, जंगल, और खान सभी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को पट्टे पर दे दिये गये। 1999 तक केवल पानी और हवा बहुराष्ट्रीय कंपनियों के कब्ज़े के बाहर थे। कई वर्षों से भारी बेरोज़गारी और महंगाई की मार झेल चुके लोगों की सहन सीमा पानी के निजीकरण और जल प्राप्ति पर पाबंदी लगाने से समाप्त हो गयी। पानी के निजीकरण के विरूद्ध जनता के विरोध को स्वर देने के लिए किसानों, शहरी व ग्रामीण जल उपभोक्ता समितियों, पर्यावरण–संरक्षण के लिए आंदोलन चलाने वाले समूहों, अध्यापकों, विद्यार्थियों और मज़दूर संगठनों ने 'जल और जीवन की रक्षा के लिए समन्वय समिति' नाम के गठबंधन का निर्माण किया। इस गठबंधन ने शहरों और गांवों के उपेक्षित गरीबों में जागरूकता पैदा करने तथा सरकार पर उनकी मांगों पर विचार करने के लिए दबाव डालने के उद्देश्य से सार्वजनिक सभाएं आयोजित की और राष्ट्रव्यापी जनमत संग्रह कराया। जनवरी और अप्रैल 2000 के बीच इस जनांदोलन की ओर से शांतिपूर्ण तरीके से हड़तालें की गयीं और सड़कों पर चक्का जाम किया गया।

आखिरकार सरकार को झुकना पड़ा और उसने बैकटेल की सहायक कम्पनी के साथ हुए समझौते को रद्द कर दिया। 1999 के जल कानून में संशोधन किया गया और पानी को लोगों की प्राकृतिक विरासत मानते हुए उस पर जनता का अधिकार बहाल कर दिया गया। कोचाबाम्बा ने सामुदायिक भागीदारी पर आधारित जल प्रबंधन व्यवस्था अपनाई। आवश्यक सेवाओं के प्रबंधन के सरकारी अनुभव और उसके बाद निजी कम्पनी द्वारा जल प्रबंधन के अनुभव को देखते हुए जन–संघर्ष के दौरान विकसित हुआ नया मॉडल साझी संपत्ति वाले संसाधनों के प्रबंधन में जवाबदेही सुनिश्चित करने का सबसे कारगर तरीका साबित हुआ। आज कोचाबाम्बा की जल–आपूर्ति प्रणाली की देखरेख –एक संचालन दल द्वारा किया जाता है जिसके सदस्य गुप्त मतदान के ज़रिए जनता द्वारा चुने जाते हैं । पानी का शुल्क ढांचा भी तर्कसंगत रखा गया है ताकि गरीब भी इसका फायदा उठा सके। कम्पनी का श्रम संगठन भी प्रबंधन में भागीदार है। बोलिविया के लोगों ने पानी जैसी सामाजिक वस्तु का साझा अधिकारों के लोकतांत्रिक तरीके से उपयोग करने का रास्ता दिखाया है।[117]

किफायती दामों पर करने की क्षमता न होने के कारण पहले से ही कमज़ोर आर्थिक स्थिति वाले छोटे सेवाप्रदाता, उत्पादक, किसान और कामगार–बाज़ार में नहीं टिक पाते। जो लोग विविध छोटे, आत्म–निर्भर उद्यमों को चलाते हैं, उन्हें सुविधा प्राप्त प्रतिद्वंद्वियों द्वारा पराजित कर दिया जाता है।

अधिकारों का चुनिंदा इस्तेमाल

चौथी विषमता विभिन्न प्रकार के ऐसे अधिकारों के बीच है जिन्हें वैश्वीकरण की विचारधारा का समर्थन प्राप्त है, जैसे सामाजिक अधिकारों पर बाजारोन्मुखी अधिकारों को प्राथमिकता; संपत्ति, निवेश और व्यापार अधिकारों को समानता, श्रम की गतिशीलता, सामाजिक

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

न्याय और समुदायों के अधिकारों से ज्यादा वरीयता दिया जाना। इसका विशिष्ट प्रभाव उस समय स्पष्ट दिखाई देता है जब हम संपत्ति अधिकारों, खासकर 'बौद्धिक सम्पदा अधिकारों' (Intellectual Property Rights - आईपीआर) के प्रति पूर्वाग्रह देखते हैं।

बौद्धिक सम्पदा अधिकार ताकत का ऐसा साधन है जिसको प्राप्त करने वाले अन्य आर्थिक गतिविधियों पर नियंत्रण या प्रभाव हासिल कर सकते हैं। यह काफी हद तक स्पष्ट किया जा चुका है कि गरीब राष्ट्रों को बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से कम लाभ पहुंचता है। बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को व्यापक संरक्षण दिए जाने का अर्थ है कि बड़े पश्चिमी निगमों का औद्योगिक विकास और विकासशील देशों के साथ आयात और निर्यात पर सुदृढ़ नियंत्रण है। अनुमान लगाया गया है कि दुनियाभर में तमाम पेटेंटों में से 97 प्रतिशत पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का कब्ज़ा है और अमेरिका तथा यूरोप की केवल छह बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धिक सम्पदा अधिकारों में से 70 प्रतिशत पर कब्ज़ा जमाए हैं।[118] इन अधिकारों द्वारा पहले से अमीर देशों और निगमों को रॉयल्टी के रूप में भारी धन प्राप्त होता है, जबकि दूसरी ओर, विकासशील देशों की अनुसंधान और प्रयोग करने की क्षमता कमज़ोर पड़ती है।

बौद्धिक सम्पदा अधिकार नियमों को मानने वाले राष्ट्रों ने यह महसूस किया है कि वे औद्योगिक, प्रौद्योगिकी और व्यापार संबंधी नीतियों के मामले में प्रतिबंधित हो जाते हैं। भागीदार देश में एक बार किसी आविष्कार या प्रक्रिया का पेटेन्ट होने के बाद सभी भागीदार राष्ट्रों में उसका इस्तेमाल या व्यापार पेटेन्टधारक द्वारा नियंत्रित किया जाता है–इस तरह पश्चिम का प्रौद्योगिकी संबंधी वर्चस्व और भी मजबूत हो जाता है।

अक्सर बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से वे संसाधन और उत्पाद निजी स्वामित्व के दायरे में लाए जाते हैं जो अभी तक सार्वजनिक क्षेत्र में थे और सभी लोगों को मुक्त रूप से उपलब्ध थे। बौद्धिक सम्पदा अधिकारों में बढ़ोतरी और उनके विस्तार से सामुदायिक संसाधनों पर नियंत्रण करने की कम्पनियों की क्षमता हाल के वर्षों में काफी बढ़ी है। विश्व ने जैव–विविधता के फायदों को बड़ी देरी से समझा है–सिर्फ इसलिए नहीं कि मनुष्य दर्पपूर्वक जीवन के अन्य रूपों को व्यर्थ न मान ले, बल्कि इसलिए भी कि पौधों और जीव–जन्तुओं से मानवता को लाभ है, जैसे सभी प्रकार की दवाओं से लाभ होता है।

विभिन्न मानव समुदायों का अस्तित्व मूलभूत रूप में उनके चारों ओर विद्यमान विविधतापूर्ण जीवराशि पर आधारित है। मानव जाति द्वारा प्रकृति पर हो रही अपरिवर्तनीय क्षतियों के बारे में बढ़ती हुई जागृति के कारण हाल ही में जैविक वैविधता के बारे में एक समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। किन्तु, उसी दौरान अन्य अंतर्राष्ट्रीय समझौतों से उन हितों को खतरा उत्पन्न हो गया है जिनकी रक्षा के लिए जैव–विविधता संधि की गई थी। इनमें प्रमुख है – व्यापार संबंधी बौद्धिक सम्पदा अधिकार (Trade Related Intellectual Property Rights - ट्रिप्स) समझौता–जिससे पहले से ही कमज़ोर उन समुदायों के लिए, यह खतरा उत्पन्न हो गया कि वे उन प्राकृतिक संसाधनों का लाभ नहीं उठा

भारत : जैव–तस्करों का निशाना

भारत में करीब 45,000 ज्ञात पादप प्रजातियां पायी जाती हैं जिनमें से कई पौष्टिक आहार या औषधीय महत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। चिकित्सा की सुपरिचित आयुर्वेदिक पद्धति के अलावा जड़ी–बूटियों पर आधारित उपचार की कई देसी प्रणालियां इस उपमहाद्वीप में विकसित हुई हैं। आंवला, नीम, हल्दी, ब्राह्मी और आंगन के बगीचे में उगाये जाने वाले कई अन्य पौधे आम बीमारियों के इलाज में इस्तेमाल किये जाते हैं। जैव प्रौद्योगिकी और भेषज संबंधी अनुसंधान से इन जड़ी बूटियों से प्राप्त होने वाले रासायनिक यौगिकों और अनुवांशिक सामग्री को आर्थिक दृष्टिकोण से ज़बरदस्त महत्व मिला है। परम्परागत कानून के विपरीत ट्रिप्स समझौते में केवल सूक्ष्म जीवाणुओं, सूक्ष्म जीववैज्ञानिक तथा गैर–जैविक प्रक्रियाओं के पेटेंट की अनुमति दी गयी है। परिणाम स्वरूप 'जैव–पदार्थों का पूर्वेक्षण' (bio-prospecting) शुरू हो गया है। जो पहले मुक्त रूप से उपलब्ध सामुदायिक संसाधन थे, उनका 'पुनराविष्कार' होने लगा है और उन्हें पेटेंट कराया जा रहा है। इससे जो चीजें पहले सार्वजनिक उपयोग के लिए उपलब्ध थीं, वे अब निजी संपत्ति बन गयी हैं और लोगों को उपलब्ध नहीं हो रही हैं। हल्दी के घाव ठीक करने के गुण और नीम के पेड़ के कीटनाशक गुण के लिए हाल में अमेरिका में जो पेटेंट जारी किये गये हैं वे इसके उदाहरण हैं (भारत और बांगलादेश में सदियों से इन दोनों के बारे में लोगों को पता था और इनका उपयोग भी होता आया है।[119]

नीम की जैव तस्करी

नीम के पेड़ से प्राप्त होने वाले पदार्थों का उपयोग कई बीमारियों जैसे मधुमेह, पीलिया, गठिया और चर्म रोगों का उपचार करने में परम्परागत

cyan black

रूप से किया जाता है। भारत और बांगलादेश में किसान फसलों और अनाज भंडारों को फफूंद और कीड़े–मकौड़ों से बचाने के लिए नीम के तेल का उपयोग करते हैं। 1995 में यूरोपीय पेटेंट कार्यालय ने अमेरिका के कृषि विभाग और 250 करोड़ अमेरिकी डॉलर की संपत्ति वाली अमेरिकी रसायन कम्पनी डब्ल्यू.जी. ग्रेस एंड कंपनी को नीम के तेल से बनने वाले कीटनाशक बनाने के लिए संयुक्त पेटेंट जारी किया। अगर इसे चुनौती नहीं दी जाती तो इस पेटेंट से किसान विभिन्न उद्देश्यों के लिए नीम के तेल और इसके मिश्रण से बनने वाले पदार्थ बनाने तथा उनका इस्तेमाल करने के अधिकार से वंचित रह जाते। इसकी जगह उन्हें ग्रेस एण्ड कम्पनी से उत्पाद खदीरने को मजबूर होना पड़ता और अगर वे ऐसा नहीं करते तथा घर में बना नीम का तेल इस्तेमाल करते तो उन्हें कानूनी कार्रवाई का सामना करना पड़ता। प्रसंगवश यह कम्पनी अमेरिका में एसबेस्टस विषाक्तता फैलाने, कुओं के पेय जल में ज़हरीले पदार्थ छोड़ने के लिए भी मशहूर है और पीड़ितों ने इसके खिलाफ 250,000 हर्जाने के दावे दायर कर रखे हैं ।[120]

भारत और यूरोप के पर्यावरण आंदोलनकारियों ने यूरोपीय पेटेंट कार्यालय में इस पेटेंट को चुनौती दी और किसानों तथा वैज्ञानिकों के कई हलफनामें यह साबित करने के लिए प्रस्तुत किये कि अमेरिका और ग्रेस एण्ड कम्पनी द्वारा पेटेंट का दावा करने से कई दशक पहले से नीम और उसके उपयोग के बारे में अनुसंधान चल रहा था और उनके दावे में कोई नयी बात नहीं थी।[121] मई 2000 में यूरोपीय पेटेंट कार्यालय ने पेटेंट वापस ले लिया। अपनी प्राकृतिक विरासत पर कब्ज़ा बनाए रखने के लिए संघर्ष कर रहे विकासशील देशों की यह महत्वपूर्ण विजय थी। इसी कार्यालय द्वारा दिये गये नीम के 14 अन्य पेटेंटों तथा अमेरिका में दिये गये कम से कम 100 अन्य पेटेंटों को विभिन्न संगठनों और आंदोलनकारियों द्वारा चुनौती दी जा रही है।

हल्दी की जैव तस्करी

ग्रामीण भारत में हल्दी का उपयोग जख़्मों के इलाज में एंटीसेप्टिक के रूप में होता आया है। भारत और पाकिस्तान के व्यंजनों में भी आमतौर पर हल्दी का इस्तेमाल किया जाता है। 1995 में अमेरिकी पेटेंट और ट्रेड मार्क कार्यालय ने हल्दी का पेटेंट मिसिसिपी विश्वविद्यालय के मेडिकल सेंटर को घाव को भरने वाले पदार्थ के रूप में हल्दी पाउडर के उपयोग संबंधी उसकी खोज के आधार पर दे दिया। भारत में वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान के विकास के लिए गठित संस्था वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद (CSIR) ने इस पेटेंट को चुनौती दी। परिषद ने अमेरिकी पेटेंट और ट्रेड मार्क कार्यालय के समक्ष जो प्रमाण प्रस्तुत किये उनमें चिकित्सा संबंधी प्राचीन ग्रंथों के अनुवादित अंश भी शामिल थे। इन साक्ष्यों से इस बात की पुष्टि होती थी कि भारत में हल्दी का उपयोग परम्परागत रूप से चिकित्सा में किया जाता रहा है और पेटेंट हासिल करने वाले की खोज में कुछ भी नया नहीं है। अमेरिकी पेटेंट और ट्रेड मार्क कार्यालय ने यह तर्क स्वीकार कर लिया और 1997 में पेटेंट वापस ले लिया।[122]

बासमती की जैव तस्करी

पाकिस्तान और उत्तर भारत के हजारों किसान कई पीढ़ियों से लम्बे दाने वाला खुशबूदार बासमती चावल उगाते आये हैं। इसे बासमती के नाम से जाना जाता है। पाकिस्तान और भारत में फसल अनुसंधान संस्थान 1930 से बासमती चावल की गुणवत्ता और पैदावार में बढ़ौतरी के लिए अनुसंधान कर रहे हैं। किसानों ने खुद भी इसकी नयी किस्में विकसित की हैं। पाकिस्तान में किसान परम्परागत विधियों से कम से कम 22 नयी नस्लें और भारत में 27 नई नस्लें उगा रहे हैं । इसके बावजूद, 1997 में एक अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कम्पनी राइसटेक ने अपने उत्पादों के लिए 'बासमती' शब्द का उपयोग के लिए अमेरिकी पेटेंट और ट्रेड मार्क कार्यालय से ट्रेड मार्क हासिल कर लिया। राइसटेक ने दावा किया कि उसने अपनी प्रयोगशालाओं में बासमती की नयी नस्ल का विकास किया है और पेटेंट हासिल कर लिया। इसका अर्थ यह था कि भारत और पाकिस्तान के किसान अपनी उपज के लिए बासमती शब्द का उपयोग नहीं कर सकते। इस तरह उसने बाज़ार में अपना एकाधिकार कायम करने के लिए भारतीय और पाकिस्तानी किसानों के योगदान की अनदेखी कर दी।[123]

पर्यावरण के बारे में जागरूक लोगों और वैज्ञानिकों ने भारत के उच्चतम न्यायालय में एक जनहित याचिका दायर की जिसमें अदालत से अनुरोध किया गया कि वह सरकार से इस पेटेंट को चुनौती देने को कहे। सन् 2000 में सरकार ने राइसटेक के पेटेंट हासिल करने के 20 में से तीन दावों को चुनौती दी। इसके बाद जब राइसटेक ने अमेरिकी पेटेंट और ट्रेड मार्क कार्यालय से अपने चार दावों को वापस लिया तो पेटेंट कार्यालय ने उसके सभी दावों को समीक्षा के लिए खोल दिया। मई 2001 में पेटेंट कार्यालय ने राइसटेक को बताया कि उसके सभी दावों में से तीन मौलिकता की कसौटी पर खरे नहीं उतरने के कारण अस्वीकार किये गये हैं।[124] इस अस्वीकृति के बावजूद राइसटेक 'बासमती' नाम से अपने उत्पादों की बिक्री कर सकता है। लेकिन भारतीय और पाकिस्तानी किसानों का इस प्रजातीय (generic) नाम का उपयोग करने का अधिकार सुरक्षित बना रहा।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

जैव विविधता कानून

पिछली सहस्राब्दिके अंत में सर्वोच्च न्यायालय में दायर की गई जनहित याचिका का सार्थक परिणाम यह हुआ कि अदालत ने देश की जैव विविधता के संरक्षण के लिए सरकार को कानून बनाने का निर्देश दिया। संसद द्वारा पारित 2002 के जैव विविधता कानून में देश में उपलब्ध पेड़–पौधों और वनस्पतियों के आनुवंशिक संसाधनों तक पहुंच को विनियमित करने के लिए राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण गठित करने की व्यवस्था की गयी है। भारतीय वैज्ञानिकों और कम्पनियों को अनुसंधान के लिए इन संसाधनों के उपयोग की छूट होगी, लेकिन उन्हें प्राधिकरण की अनुमति के बिना इस ज्ञान को विदेशी कम्पनियों को सौंपने की इजाज़त नहीं होगी। पर्यावरण के बारे में आंदोलन चलाने वालों ने नये कानून को जैव तस्करी पर कारगर रूप से रोक लगाने की दृष्टि से कमज़ोर बताया है।[125]

सकेंगे, जिन पर वे अब तक निर्भर रहे हैं और जिनकी पहचान उन्होंने सदियों के अपने ज्ञान और कौशल के आधार पर की है। उदाहरण के लिए, जनन–द्रव्य (germ plasm) में मामूली संशोधन करके और 'सस्य अभिजनकों के अधिकार' कानून के अंतर्गत उसे अपने नाम दर्ज़ कराके बड़ी कम्पनियों ने उस अनुसंधान के लाभों पर नियंत्रण कर लिया, जिसे सार्वजनिक वित्तपोषित राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान केन्द्रों द्वारा विकसित किया गया था, और उन्होंने बड़ी कंपनियों को जनन–द्रव्य सहित अपने अनुसंधान के निष्कर्ष बिना किसी लागत के उपलब्ध कराए थे। इस तरह बार–बार ऐसा हुआ कि सांझे उद्देश्यों के लिए प्रयोग किए जाने वाले सार्वजनिक धन का लाभ अनुचित अनुपात में निजी कम्पनियों द्वारा उठाया गया है। इसी तरह के एक कानून का इस्तेमाल दवाओं और अन्य प्रकार के ज्ञान और जनजातीय तथा अन्य समुदायों की विरासत पर नियंत्रण करने के लिए किया गया– और बाद में ऊंची लागत पर उन्हीं लोगों को बेच दिया गया।

एक तरफ ट्रिप्स समझौते और दूसरी ओर जैव विविधता समझौते मानवाधिकारों संबंधी सार्वभौम घोषणा और आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों संबंधी अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा के बीच के तनावों ने उन तनावों को उजागर किया जो वैश्वीकरण के दौरान समग्रतापूर्ण मानावधिकार दृष्टिकोण न अपनाए जाने से पैदा हुए। वैश्वीकरण के लाभ बहुराष्ट्रीय निगमों और नुकसान विकासशील देशों के किसानों के हिस्से आ रहे हैं। अगर पेड़ पौधों की संकर नस्ल विकसित करने और जड़ी बूटियों से दवाएं बनाने में किसानों और जनजातीय समुदायों के योगदान का मूल्यांकन किया जाए तो बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को स्वदेशी ज्ञान प्रणाली पर आधारित जैव–पेटेंट हासिल करने के लिए विकासशील देशों को कई हज़ार करोड़ रुपये अदा करने होंगे।[126]

डब्ल्यूटीओ से संबंधित प्रावधानों की एक खास विशेषता यह है कि इसके सभी सदस्यों के लिए बौद्धिक सम्पदा अधिकार समान रूप से लागू हैं, चाहे उन्होंने बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय समझौतों पर हस्ताक्षर किए हों या नहीं। विकासशील देशों के लिए इन अंतर्राष्ट्रीय समझौतों के प्रभावों के असंतुलन को ध्यान में रखते हुए, अनेक देशों ने अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली से बाहर रहना उचित समझा या अपनी विधि प्रणाली में उन्हें संशोधित रुप में शामिल किया। अब दुनिया की प्रमुख दवाई कंपनियों द्वारा तैयार किया गया ट्रिप्स समझौता सभी देशों को बाध्य करता है कि वे इन समझौतों का अनुसरण करें और उन्हें राष्ट्रीय और विदेशी व्यक्तियों या निगमों के बीच बिना कोई भेदभाव किए लागू करें। कई विकासशील देश अब इसका अनुसरण कर रहे हैं और अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा अधिकारों संबंधी मानदंडों के अनुसार अपने पेटेंट कानूनों को ढाल रहे हैं।

खाद्य आपूर्ति और वितरण के संदर्भ में ट्रिप्स की जटिलताओं की ओर पहले संकेत किया जा चुका है। अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र फार्मास्युटिकल्स है। ट्रिप्स सामान्य दवाओं के विनिर्माण या आयात का प्रबन्ध करने की राष्ट्रों की क्षमता में भारी कमी लाता है। नतीजा यह होता है कि दवाओं के मूल्यों में खासी बढ़ोतरी हो जाती है और उष्ण प्रदेश की बीमारियों के बारे में अनुसंधान में कमी आती है। पश्चिमी देशों में वैज्ञानिक और उत्पादन क्षमता के केन्द्रीकरण में भी और बढ़ोतरी होगी क्योंकि अंर्तराष्ट्रीय कम्पनियों को विकासशील देशों को सीधे प्रौद्योगिकी हस्तांतरण या विदेशी निवेश की बजाय तैयार या अर्ध–तैयार उत्पाद के निर्यात की छूट होगी। इस तरह चिकित्सा अनुसंधान और दवा विनिर्माण बाज़ार के अधीन हो जायेगा। 'मेडिसिन साँ फ्रांतियेर (Medicins sans Frontière) ने कहा है कि गरीब देशों में मरीज मर जायंगे क्योंकि जीवन बचाने वाली दवाओं तक उनकी पहुंच नहीं होगी और उपेक्षित बीमारियों के लिए

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

विकसित और विकासशील देश : पेटेंट विरोधाभास

दक्षिण एशिया में गरीबी का एक प्रमुख परिणाम यह भी है कि यहाँ विज्ञान और टेक्नोलॉजी के आधारभूत ढांचे का मामूली विकास हुआ है। करोड़ों अशिक्षित लोगों को प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने की ज़बरदस्त आवश्यकता की वजह से सरकारों के पास उच्च शिक्षा के लिए धन की लगातार कमी पड़ती जा रही है । अधिकतर अनुसंधान और विकास गतिविधियां सरकार द्वारा वित्तपोषित विश्वविद्यालयों तथा संस्थाओं में होता है। कुछ ही औद्योगिक घरानों की अपनी प्रयोगशालाएं हैं । दक्षिण एशियाई क्षेत्र में शिक्षित कुशल श्रम शक्ति का सबसे बड़ा संसाधन भंडार भारत के पास है। यहाँ के सबसे प्रतिभाशाली लोग आई आई टी और आई आई एम जैसी चोटी के संस्थाओं में प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं जो करदाताओं के पैसे से चलते हैं, लेकिन नौकरी की तलाश और अनुसंधान के लिए प्रशिक्षित लोग विदेश चले जाते हैं। प्रवासी भारतीय अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी– नासा, कैलीफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑव टेक्नोलॉजी (कैल्टेक) और मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑव टेक्नोलॉजी (एम.आई.टी.) जैसी संस्थाओं में ऊंचे पदों तक पहुंचे हैं। इन लोगों ने विज्ञान और टेक्नोलॉजी को समृद्ध करने और पश्चिम में विशेषज्ञों की दूसरी पीढ़ी के प्रशिक्षण में बड़ा अच्छा योगदान किया है। दक्षिण एशिया के अन्य देशों में भी अनुसंधान और विकास की स्थिति ज्यादा भिन्न नहीं है।

1994 मे मर्राकेश समझौते के हिस्से के तौर पर विश्व व्यापार संगठन के सदस्य देशों ने व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा समझौते के प्रावधानों को स्वीकार किया। ट्रिप्स समझौते से विकासशील देश घाटे में हैं क्योंकि इसमें उनसे अपने पेटेंट कानूनों को समयबद्ध तरीके से अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा अधिकारों की व्यवस्था के अनुरूप बनाने को कहा गया है। इससे उन्हें अपने दरवाजे विदेशियों के लिए खोलने होंगे जो कि इन देशों में पेटेंट का दावा करेंगे जिससे स्वदेश में अनुसंधान हतोत्साहित होगा। स्वदेशी अनुसंधान में विशेषज्ञता हासिल करने के लिये अधिक समय और संसाधनों की ज़रूरत होती है। इस लिये सरकारें अल्पावधि की कामचलाऊ नीति अपनाते हुए पेटेंटों को मान्यता दे देती हैं क्योंकि उन पर ज़्यादा पैसा खर्च नहीं करना पडता। सहस्राब्दि परिवर्तन के समय यह अनुमान लगाया गया था कि ओ ई सी डी (Organisation for Economic Cooperation and Development) देश (जिनमें अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड और यूरोपीय संघ के ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, पुर्तगाल और स्पेन जैसे देश शामिल हैं) दुनिया के 97 प्रतिशत पेटेंटों पर कब्ज़ा जमाए हुए हैं। इनमें से टेक्नोलॉजी और उत्पाद संबंधी 90 प्रतिशत पेटेंट विश्व स्तरीय बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के पास हैं।[127] विकसित देशों में पेटेंट संबंधी कठोर शर्तों के कारण बहुत कम दक्षिण एशियाई लोग और संस्थाएं विदेशों में अपने पेटेंट के दावों में कामयाब रही हैं। हाल में भारत में वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद ने अपना सौवाँ पेटेंट अमरिकी ट्रेडमार्क और पेटेंट कार्यालय से हासिल किया है।[128]

नागरिक समाज के मुखर विरोध के बावजूद दक्षिण एशियाई देश अपने पेटेंट कानूनों में संशोधन कर उन्हें ट्रिप्स मानदंडों के अनुसार ढाल रहे हैं। फिर भी पेटेंट के बारे में आंकड़ों से संकेत मिलता है कि इस क्षेत्र में स्थानीय लोगों की बजाय विदेशी एजेंसियों का बोलबाला है।

दर्ज़ किये गये पेटेंट : दक्षिण एशिया और विकसित देश –विरोधाभास[129]

देश	निवासियों द्वारा दर्ज़ कराये गए पेटेंटों की संख्या	गैर निवासियों द्वारा दर्ज़ कराये गए पेटेंटों की संख्या	देश	निवासियों द्वारा दर्ज़ कराए गए पेटेंटों की संख्या	गैर–निवासियों द्वारा दर्ज़ कराए गए पेटेंटों की संख्या
बांगलादेश	32	184	अमेरिका	1,56,393	1,38,313
भारत	14	38,348	ब्रिटेन	31,326	1,61,549
पाकिस्तान	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं	जर्मनी	74,232	1,46,529
श्रीलंका	0	41,263	जापान	3,61,094	81,151

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

अनुसंधान और विकास का अभाव होगा।[130] ये मरीज इसलिए नहीं मर रहे हैं कि उनकी बीमारी लाइलाज है (एच आई वी/एड्स को छोड़कर), बल्कि इसलिए कि उपभोक्ताओं के रूप में वे ऐसा बाज़ार उपलब्ध नहीं करा सकते जिसमें फार्मास्युटिकल उत्पादों से पर्याप्त मुनाफा कमाया जा सके।

हाल ही में दक्षिण अफ्रीकी सरकार के खिलाफ एक मामला दर्ज किया गया था, लेकिन बाद में उसे वापस ले लिया गया। इसमें उसे एच आई वी/एड्स के लिए सामान्य दवाएं आयात करने से रोकने की मांग की गई थी। इससे ट्रिप्स के नकारात्मक प्रभावों का पता चलता है। हालांकि फार्मास्युटिकल कम्पनियां दक्षिण अफ्रीका में रियायतें देती हैं, लेकिन अन्य देशों, जैसे केन्या में वे इसका विरोध करती हैं। अब केन्या भी दक्षिण अफ्रीका की ही तरह का कानून बनाने जा रहा है। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि 'संयुक्त राष्ट्र

दवाई की ताकत : विश्वस्तरीय औषधीय निगम

दुनिया भर में दवाओं की लगातार बढ़ती मांग के साथ–साथ बाज़ार का नियंत्रण कुछ विश्वस्तरीय निगमों के हाथों में केन्द्रित हो गया है। 1981 में चोटी की 10 दवा कम्पनियों का बाज़ार पर 20 प्रतिशत नियंत्रण था। पिछली सहस्राब्दि के अंत तक चोटी की 10 कम्पनियों ने 31,700 करोड़ अमेरिकी डॉलर के विश्व बाज़ार में से 48 प्रतिशत पर कब्ज़ा कर लिया था। लेकिन नयी दवाओं के विकास में निजी क्षेत्र का योगदान नाममात्र का ही रहा है। 1975 और 1996 के बीच 1200 नयी दवाएं व्यापारिक तौर पर जारी की गयीं। इनमें से केवल चार का विकास औषधि कंपनियों द्वारा हुआ था। बाकि दवाओं का विकास सार्वजनिक कोष से वित्तपोषित अनुसंधान संस्थाओं में किया गया। रेनबैक्सी, डॉ0 रेड्डीज़ लैब्स और सिप्ला जैसी शीर्षस्थ भारतीय दवा कम्पनियों की आमदनी का बड़ा हिस्सा विदेशों में बिक्री से आता है, मगर विश्व स्तर की भारी भरकम दवा कम्पनियों की ताकत और फैलाव के आगे ये बौनी लगती हैं। ये विशालकाय कम्पनियां अब भारतीय बाज़ार में अपनी पैठ बना रही हैं।[131]

दुनिया की 10 शीर्षस्थ कंपनियां[132]

कम्पनी	कुल बिक्री (करोड़ रुपये में)	भारत में बिक्री (करोड़ रुपये में)
फाइज़र	1,22,400	76[a]
ग्लैक्सो स्मिथक्लैन बीचम	1,19,040	98[a]
मर्क एण्ड कं0	1,02,480	10.6[a]
एस्ट्राज़ेनेका	79,104	23[b]
ब्रिस्टल–मायर्स स्क्विब	74,880	उपलब्ध नहीं
एवेंटिस	73,680	61[a]
जॉनसन एण्ड जॉनसन	71,520	उपलब्ध नहीं
नोवर्टिस	69,600	62[a]
फार्मेसिया	57,456	1.2[a]
इली लिली	55,392	उपलब्ध नहीं

a = लाभ b = शुद्ध आय

सभी आंकडे 2001–02 के लिए

भारत की 7 शीर्षस्थ कंपनियां[133]

कम्पनी	कुल आय (करोड़ रुपये में)
रैनबैक्सी	2,768
डॉ0 रेड्डीज़	1,584
सिप्ला	1,598
ल्यूपिन	1,121
सन फार्मा	995
वॉकहार्ट	810
कैडिला	679

सभी आंकड़े 2002 –03 के लिए

cyan black

जान की कीमत लगाना

ट्रिप्स ऐसी अनेक सार्वजनिक नीतियों पर प्रतिबंध लगाता है, जो सस्ती और व्यापक पहुंच वाली स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं को बढ़ावा देती हैं। कम दाम पर दवाएं उपलब्ध कराने और सजातीय दवाएं विनिर्माण की स्थानीय क्षमता बढ़ाने के लिए अनेक विकासशील देशों के राष्ट्रीय कानूनों में परम्परागत रूप में औषधियों और दवाओं के उत्पाद पर पेटेंट को शामिल नहीं किया गया और केवल 'प्रक्रिया पर पेटेंट की अनुमति दी गई। ट्रिप्स के अंतर्गत उत्पाद और प्रक्रिया दोनों ही पर पेटंट अनिवार्य हैं। इससे इस बात की संभावनाएं हो जाती है कि स्थानीय कम्पनियां महत्वपूर्ण जीवन रक्षक दवाओं के सस्ते संस्करण बना सकें। 1998 में एड्स निवारक दवा फ्लूकान्जोल की कीमत भारत में प्रति 100 गोलियां (प्रत्येक 150 मि.ग्रा. की) 55 अमेरिकी डालर थी, लेकिन मलेशिया में 687 अमेरिकी डालर, इंडोनेशिया में 703 अमेरिकी डालर और फिलिपीन्स में 817 अमेरिकी डालर थी।[134]

मानवाधिकार उप–आयोग (U N Subcommission on Human Rights) ने मानवाधिकार कानूनों के साथ ट्रिप्स को रखने के औचित्य पर सवाल उठाया है। उसने पाया है कि ट्रिप्स के नेतृत्व में निजी क्षेत्र के बौद्धिक सम्पदा अधिकारधारकों और अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार कानून में वर्णित 'सामाजिक' या 'सार्वजनिक' सरोकारों के बीच बहुत बड़े अन्तर्विरोध हैं। विकासशील देशों में सजातीय औषधियों ने कम खर्च पर दवाइयां उपलब्ध कराने और प्रौद्योगिकी तथा उत्पादन का आधार प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। सजातीय दवाओं पर पेटेंटिड दवाओं की लागत का एक हिस्सा (कभी–कभी तो मात्र 10 प्रतिशत) मात्र खर्च होता है। इससे प्रतिस्पर्धा के जरिए पेटेंटिड दवाओं की कीमतों में कमी लाने में मदद मिली है।

ऊपर वर्णित सभी तरीकों से समुदायों पर वैश्वीकरण का गहरा प्रभाव पड़ा है। इसने बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और उनके देशों की सरकारों, निवेशकों और मेजबान देश के विशिष्ट वर्ग, निगमों और व्यावसायिक संघों–जैसे लेखाकारों, इंजीनियरों और वकीलों–तथा अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय और व्यापार संगठनों व अंतर्राष्ट्रीय मीडिया के बीच संबंधों को नया रूप प्रदान किया है। इन समीकरणों ने अक्सर ऐसे विचारों को दबाने की कोशिश की है जो वैश्वीकरण को चुनौती देने वाले या उसकी आलोचना करने वाले हों। साथ ही उन्होंने वैश्वीकरण का शिकार हुए लोगों को प्रभावी ढंग से दरकिनार करने की कोशिश की है। गरीब देश एक वैश्वीकृत संसार में अपने हितों की रक्षा करने की क्षमता और कौशल शायद ही विकसित कर पाएं।

इन हालात को देखते हुए विश्व आज विभाजित नज़र आ रहा है।[135] मानवता का एक भाग फल–फूल रहा है–साफ शब्दों में कहें तो वैश्वीकरण के प्रकाश में धूप सेंक रहा है–जबकि दूसरा भाग निरन्तर गहराती जा रही उदासी और निराशा में डूबता जा रहा है।[136]

वास्तव में इस समय वैश्वीकरण की मूलभूत विचारधारा और सार्वभौम रूप में स्वीकृत मानवाधिकारों के बीच संघर्ष की स्थिति बनी हुई है। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय, राष्ट्रों की सरकारों, नागरिक समुदाय और मानवाधिकार समुदाय के सामने चुनौती यह है कि मानवाधिकार लाभ कमाने के लक्ष्य के अधीनस्थ न हो जायें और वैश्वीकरण के इंजिन, उसके कानून, संस्थान, प्रक्रियाएं और नतीजे सभी मानवाधिकारों के अनुकूल हों। महत्वपूर्ण सवाल यह नहीं है कि तीव्र परिवर्तन की प्रक्रियाएं, जो हम अनुभव कर रहे हैं, अनिवार्यतः अच्छी हैं या बुरी, बल्कि मुद्दा यह है कि वे मानवाधिकारों को कितनी मान्यता देती हैं और उनके लिए कितना काम कर पायेंगी। इस तरह से मानवाधिकारों का वैश्वीकरण अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय आर्थिक व्यवहार का केन्द्रबिंदु बन जायेगा और उसी के साथ, अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण मानवाधिकारों के अनुकूल हो जायेगा।

भ्रष्टाचार और कुप्रशासन

वैश्वीकरण के युग में लोकतांत्रिक प्रक्रिया और सुशासन के बीच खाई बढ़ती जा रही है। राष्ट्रीय सरकारों के प्रशासन और तौर–तरीके निजी हितों की तुलना में सामाजिक न्याय और जनकल्याण के प्रति निरन्तर कम ज़िम्मेदार होते जा रहें हैं। विशिष्ट वर्ग द्वारा अपने हित–संरक्षण के कारण प्रणालियां पारदर्शी नहीं हैं और वास्तव में गोपनीयता पर जीवित हैं। इससे भ्रष्टाचार का जन्म होता है जो बिना रोकथाम के जारी रहता है। लोकतांत्रिक प्रक्रिया स्वयं भ्रष्टाचार का कारण बन गई है क्योंकि बहु–दलीय राजनीति में धन का खेल निरन्तर जारी रहता है और सत्ता का केन्द्र अमीर, लफ़्फाज़ और गैर–राष्ट्रीय नेताओं की ओर सरकता जा रहा है। निजीकरण, विदेशी निवेश, प्रायोजित प्रबन्ध, निहित स्वार्थों के लिए समर्थन जुटाने की बढ़ती प्रवृत्ति, धन का मुक्त प्रवाह और बरबादी, सभी भ्रष्टाचार को बढ़ावा देते हैं।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

भ्रष्टाचार अब व्यापक होता जा रहा है। इसके कई रूप हैं, जैसे रिश्वत, लूट–खसोट, भाई–भतीजावाद, अनुचित भर्ती और पदोन्नति, चुनावी हथकंडे (गोलमाल करना, धांधली), और संवैधानिक या अन्य दायित्वों का अपर्याप्त निर्वाह या बिल्कुल निर्वाह न किये जाना। सरकार में भ्रष्टाचार और उसकी कार्यप्रणाली में नौकरशाही का उस समय पता चलता है जब वे जन–कल्याण में रुकावटें डालने पर अधिक ध्यान केन्द्रित करते हैं और अपने कानूनी दायित्वों का पालन करने की बजाय निजी लाभ उठाने में लिप्त होते हैं। सरकार की नीतिगत प्राथमिकताओं में नैतिकता का अभाव झलकता है और अक्सर ऐसे खर्च किए जाते हैं जो लोगों की जरूरतों के मुताबिक नहीं होते। मामूली सार्वजनिक सेवाओं, जैसे जन्म प्रमाणपत्र के लिए आवेदन पत्र प्राप्त करने या सार्वजनिक वितरण प्रणालियों में राशन की दुकानों से अनाज का कोटा प्राप्त करने के लिए, रिश्वत एक पूर्व–शर्त बन गई है। नतीजा है प्रशासन में भारी अकुशलता।

कैसे जारी है गरीबी...

गरीबी कोई स्वाभाविक स्थिति नहीं है। गरीबी की गाड़ी बहुत से लोगों के सहारे ही आगे बढ़ती है। इसके लिए भ्रष्टाचार का बरकरार रहना ज़रूरी है। यह ज़िम्मेदारी कुछ देश औरों के मुकाबले बेहतर निभाते हैं। ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल का प्रसिद्ध भ्रष्टाचार अनुमान सूचकांक (corruption perception index - सीपीआई) दुनिया भर में भ्रष्टाचार को उजागर करता है और इसके बढ़ने के बारे में जानकारी देता है।[137] मार्च 2003 में बनाई गई सूची में से लगभग दो तिहाई देशों ने 5 से कम अंक प्राप्त किये (जबकि 10 अंक तक के स्कोर वालों को संभावित रूप से भ्रष्टाचार मुक्त माना गया है)। इनमें से अधिकतर देश विकासशील देश हैं। बांगलादेश सबसे अधिक भ्रष्ट देश आंका गया जिसका भ्रष्टाचार अनुमान सूचकांक 1.2 है। इसके बाद नाइजीरिया का स्थान था जिसका सूचकांक 1.6 है। दोनों ही देश राष्ट्रमंडल के सदस्य हैं। दक्षिण एशिया में श्रीलंका सबसे कम भ्रष्ट देश माना गया जिसका सूचकांक 3.7 है। इसके बाद 2.7 अंक के साथ भारत का स्थान है और 2.6 अंक पाकर पाकिस्तान भारत के पास ही है।

आश्चर्य की बात नहीं है कि अधिक धनी देशों का सूचकांक बेहतर पाया गया । ब्रिटेन और आस्ट्रेलिया 8 अंकों के साथ बेहतर स्थिति में हैं मगर वे 9 से अधिक लेने वाले सिंगापुर, न्यूज़ीलैंड और कनाडा से पीछे हैं। सिंगापुर के भ्रष्टाचार विरोधी कायदे–कानूनों का उसकी लगातार बढ़ती खुशहाली में बड़ा योगदान है। राष्ट्रमंडल के विकासशील देशों में 6.4 अंक के साथ बोत्सवाना सबसे कम भ्रष्ट है और उसके बाद 5.7 अंक वाले नामीबिया का स्थान है।

भ्रष्टाचार अनुमान सूचकांक भ्रष्ट सरकारों के नाम बताकर उन्हें शर्मिन्दा करने का तरीका भर नहीं है। इसका कारगर उपयोग करके स्थानीय लोग इसका असर बढ़ा सकते हैं। 2001 में जब भ्रष्टाचार संबंधी आंकड़े जारी किये गये, जिनमें बांगलादेश को भ्रष्ट देशों की सूची में सबसे ऊपर चोटी पर दर्शाया गया, तब वहां राष्ट्रीय चुनाव होने वाले थे। विपक्षी पार्टियों ने भ्रष्टाचार को प्रमुख चुनावी मुद्दा बनाया जिससे अंततः आवामी लीग पार्टी सत्ता से बाहर हो गयी। श्रीलंका में 2001 के चुनाव में भ्रष्टाचार प्रमुख मुद्दे के रूप में उभरा और रणिल विक्रमसिंघे की नयी यू.एन.पी सरकार प्रत्येक मंत्रालय में भ्रष्टाचार और संसाधनों की बरबादी के आरोपों की समीक्षा के लिए कमेटियां बनाने के वादे के साथ सत्ता में आयी है। पाकिस्तान की सरकार ने भी सरकारी सेवाओं में सुधार के प्रयासों के रूप में भ्रष्टाचार विरोधी एजेंसी गठित करने का वादा किया है।

भ्रष्टाचार गरीबों पर एक तरह का कर बन गया है। भ्रष्टाचार गरीबों के अधिकारों का हनन करता है, भागीदारी के अधिकार से उन्हें वंचित करता है और आर्थिक तथा सामाजिक कल्याण तक उनकी पहुंच को रोकता है। यह उनकी अक्षमताओं को और बढ़ाता है, क्योंकि उनके पास नौकरशाही के पहिए में चिकनाई डालने के साधनों का अभाव होता है। इस तरह यह समाज में वर्गभेद और असमानताओं को बढ़ाता है। पहले से धनवान और साधन–सम्पन्न लोगों को और भी सुविधाएं देता है। भ्रष्टाचार से सामूहिक लक्ष्य वाले व्यवहार्य संस्थान के रूप में राज्य के अस्तित्व को भी खतरा पैदा होता है, क्योंकि इससे उसकी समूची विश्वसनयीता समाप्त हो जाती है। कुछ मामलों में राज्य अपने अधिकार क्षेत्र में ही शक्तिहीन हो जाता है क्योंकि वह अपने को अवैध हितों के जाल से जोड़ लेता है। इससे गरीबों के हितों की रक्षा में और भी रुकावटें पैदा होती हैं और कष्ट निवारण का कोई अवसर शेष नहीं रहता। नतीजा यह होता है कि लोग लापरवाह हो जाते हैं और समाज में निराशावाद और स्वार्थ को बढ़ावा मिलता है। भ्रष्टाचार नागरिकों और सरकार के बीच विश्वास भंग कर देता है।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

भारत में कुशासन : भ्रष्टाचार के आयाम और फैलाव

भारत के कई भागों में एक रिवाज़ है जिसमें मित्र और संबंधी किसी नवजात शिशु को पहली बार देखने पर उसके माता–पिता को उपहार भेंट करते हैं। इस तरह की मुख दिखाई पर रस्म के तौर पर सवा रुपये से लेकर कोई भी सवाया राशि, चांदी/सोने के सिक्के या देने वाले की सामाजिक–आर्थिक हैसियत के हिसाब से कोई भी महंगी चीज उपहार में दी जा सकती है। बंगलौर में सार्वजनिक प्रसूति चिकित्सालयों के कर्मचारियों ने तो ऐसा लगता है कि इस प्रथा को आर्थिक लाभ के लिए संस्थागत रूप ही दे दिया है। अगर आप नगर निगम द्वारा चलाए जा रहे ऐसे किसी अस्पताल में भर्ती महिला हैं, तो आप प्रसव के बाद अपना नवजात शिशु तब तक नहीं देख पाएंगी, जब तक आप वार्ड में काम करने वाले सेवक को रिश्वत नहीं दे देतीं। अगर माता–पिता पैसा देने में कोई आना–कानी करते हैं तो इसकी पूरी आशंका है कि वार्ड के कर्मचारी किसी दूसरे के साथ आपका बच्चा बदल सकते हैं।

ये अस्पताल गरीब और कम आमदनीवाली महिलाओं के फायदे के लिए खोले गए हैं। इनमें रोगियों को मुफ्त दवा देने की भी व्यवस्था है। लेकिन डॉक्टर की पर्याप्त देखभाल और बताई गयी दवाएं प्राप्त करने के लिए प्रत्येक रोगी को औसतन 1000 रुपये से अधिक देने होते हैं। एक गैर सरकारी संगठन द्वारा कराए गए सर्वेक्षण के इस निष्कर्ष से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि राज्य की लापरवाही से किस तरह लोक सेवक गरीबों से पैसा ऐंठते हैं।[138]

ऐसा अनुमान है कि स्वास्थ्य क्षेत्र देश में भ्रष्टतम क्षेत्रों में दूसरे स्थान पर है। ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल इंडिया द्वारा कराए गए नागरिकों की धारणा संबंधी एक सर्वेक्षण से भारत में कुशासन (यानि भ्रष्ट शासन) की स्थिति का पता चलता है।[139]

- जनता पुलिस विभाग को सभी सरकारी विभागों में सबसे अधिक भ्रष्ट मानती है। इसके बाद स्वास्थ्य, बिजली और शिक्षा क्षेत्र आते हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली, भूमि राजस्व विभाग, न्यायपालिका, कर वसूली विभाग और रेलवे इसके बाद आते हैं। जनता की नज़र में दूर–संचार विभाग सबसे कम भ्रष्ट है।
- उत्तरी राज्य सबसे अधिक भ्रष्ट माने जाते हैं जहाँ नागरिकों की जेब का 39 प्रतिशत धन जन–सेवकों के पास चला जाता है, जबकि पश्चिमी राज्यों में केवल 11 प्रतिशत राशि इस तरह खर्च होती है।
- गरीब लोगों को अपने कानूनी हक जैसे राशन कार्ड बनाने, स्कूलों में दाखिला दिलाने, भू–अभिलेख की प्रतियाँ प्राप्त करने या उसमें परिवर्तन करने, प्रथम सूचना रिपोर्ट (First Information Report - FIR) दर्ज़ कराने, फर्ज़ी गिरफ्तारी से बचने, कोर्ट के रिकार्ड की प्रतिलिपि प्राप्त करने और अन्य सेवाओं के लिए सालभर में 3,900 करोड़ रुपये देने पड़ते हैं।
- वर्ष 2001–2002 में भारतीय नागरिकों ने रिश्वत के रूप में 26,768 करोड़ रुपये दिये जो सरकारी कर्मचारियों की कुल तनख्वाह के 10 प्रतिशत से अधिक है। इन आंकड़ों में मीडिया द्वारा लोगों के सामने लाये गये कई करोड़ रुपये का शेयर बाज़ार घोटाला, बोफोर्स घोटाला, रक्षा सामग्री की खरीदारी में घोटाला, हवाला घोटाला और इसी तरह के उच्च स्तरीय भ्रष्टाचार शामिल नहीं हैं जिसमें सरकार और व्यापारी के बीच सम्पर्क होता है।
- 1,000 करोड़ से अधिक की आबादी पर शासन चलाने के लिए केन्द्र और राज्य सरकारें और पंचायत तथा नगरपालिकाओं जैसे स्थानीय निकायों में 1.9 करोड़ कर्मचारियों को काम पर लगाया हुआ है। इनमें से 90 प्रतिशत तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी हैं जिन्हें निर्णय लेने का अधिकार नहीं होता और जो छुट–पुट भ्रष्टाचार का स्रोत होते हैं । भ्रष्टाचार का प्रमुख स्रोत तो प्रथम और द्वितीय श्रेणी के वे 20 लाख अधिकारी हैं जिन्हें व्यापक अधिकार प्राप्त हैं। दूसरे शब्दों में 2 प्रतिशत जनता को देश के हितों को नुकसान पहुंचाकर गैर–कानूनी तरीके से स्वार्थ सिद्ध करने का अधिकार प्राप्त है।

ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल ने भारत को दुनिया के सबसे भ्रष्ट देशों में 30 वें स्थान पर रखा है जिसका भ्रष्टाचार अनुमान सूचकांक 2.7 है।[140] 1999 के बाद भारत की रेटिंग 2.9 से और नीचे आ गयी है। ऐसे में इस बात में कोई आश्चर्य नहीं है कि आज़ादी के बाद के कुछ वर्षों में सरकार पर जनता का जो भरोसा था, वह आज नहीं रह गया है।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विकास का अनुकूल वातावरण विकसित करने के लिए भ्रष्टाचार को समाप्त करना और कल्याणकारी शासन को प्रोत्साहित करना बड़ा ज़रूरी है। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों से सम्बद्ध संयुक्त राष्ट्र समिति (सीईएससीआर) ने अनेक बार मानवाधिकारों पर भ्रष्टाचार के नकारात्मक प्रभावों के बारे में टिप्पणी की है। एक अफ्रीकी राज्य के बारे में समिति ने कहा था कि "सरकारी संस्थानों की कार्यप्रणाली में व्यापक भ्रष्टाचार के नकारात्मक प्रभावों से आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों में व्यवधान आये हैं।" एक अन्य अवसर पर समिति ने टिप्पणी की थी कि "बाज़ार आधारित अर्थव्यवस्था वाले एक लोकतांत्रिक देश में बदलाव होने की प्रक्रिया पर भ्रष्टाचार, संगठित अपराध, कर–चोरी और नौकरशाही की अकुशलता का प्रतिकूल असर पड़ता है, जिसका नतीजा यह होता है कि समाज–कल्याण खर्च और सरकारी क्षेत्र में वेतन के भुगतान के लिए पर्याप्त धन उपलब्ध नहीं रहता।[141]

सुधारों की अंतर्राष्ट्रीय कार्यसूची में भ्रष्टाचार दूर करने को काफी वरीयता दी गई है। सहायता और ऋणों के साथ भ्रष्टाचार दूर करने संबंधी अनेक शर्तें लगाई गई हैं। अभी तक उनसे सीमित सफलता ही मिल पायी है, क्योंकि कुछ देशों के राजनीतिक और आर्थिक जीवन के ताने–बाने में भ्रष्टाचार की गहरी पैठ है। प्रशासनिक सुधार लागू कराने के प्रयासों को पूर्ण समर्थन न मिल पाने के पीछे एक संदेह दानदाताओं के उद्देश्यों के प्रति होता है। उनके बारे में यह समझा जाना स्वाभाविक है कि वे अपनी कम्पनियों के शीघ्र लाभ का मार्ग प्रशस्त करने के लिए अनुकूल स्थितियां पैदा करना चाहते हैं क्योंकि वे चुनिंदा क्षेत्रों में (न कि पूरी प्रशासन) सुधार लागू कराना चाहते हैं। उन्हें इन्साफ तथा न्यायुक्त वितरण प्रणाली की चिंता नहीं होती। इन शर्तों के लिए बार–बार एसएपीज़ शुरू किए जाते हैं, जिनसे गरीबों की हालत और भी खराब हो जाती है। पेटीफर का कहना है कि अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष की तथाकथित गरीबी 'कम करने की रणनीति' (जो विशेष सहायता कार्यक्रमों की आलोचना को देखते हुए शुरू की गई थी), वास्तव में गरीबी हटाने और नागरिक समाज की भागीदारी की नीति कम है और विदेशी निवेशकों के लिए सुरक्षा और गारन्टी उपलब्ध कराने की नीति अधिक है। वे कहती हैं कि पश्चिमी 'दानदाताओं' के हस्तक्षेप से उस देश में लोकतंत्र को ज़्यादा नुकसान पहुंचाता हैं, "और वह सरकार के निर्णय लेने की प्रक्रिया में लोकतांत्रिक भागीदारी को नष्ट करता है।"[142]

मानव कल्याण के प्रति समकालीन खतरे

गरीबों की आवश्यकताओं पर ध्यान केन्द्रित करने और उनके मानवाधिकारों को पूरा करने में अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय निकायों की विफलता की वजह से व्यापक शोषण, बीमारी, संघर्ष और पर्यावरण विनाश जैसी समस्याएं पैदा हुई हैं और बनी हुई हैं। ये सब गरीबी की कारण भी हैं और उसका परिणाम भी।

सामाजिक संरचनाएं

विश्व के अनेक हिस्सों में परम्परागत सामाजिक संरचनाओं के कारण गरीबी कायम है। उदाहरण के लिए, भारत में जाति प्रथा भेदभाव के सिद्धान्त पर आधारित है और 'बहिष्करण' (exclusion) जीवन शैली बना हुआ है। देश में समतावादी संविधान है, जिसमें 'अस्पृश्यता' का अंत किया गया है और अस्पृश्यता को अपराध माना गया है। रचनात्मक कार्य और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में समान भागीदारी के प्रावधान होने के बावजूद, दस करोड़ से अधिक दलितों का सामाजिक और आर्थिक बहिष्कार लगातार जारी है। 'दलित' शब्द–जो स्व–परिभाषित है – के अर्थ से पता चलता है कि यह उन लोगों के लिए है जो पीढ़ियों से ऐसी जातियों के हैं, जो तथाकथित 'अपवित्र' कार्य करती रही हैं। इनमें शौचालयों की सफाई, मल ढोना, मरे पशुओं की खाल उतारना और उन्हें ठिकाने लगाने जैसे कार्य शामिल हैं। समाज की मुख्यधारा से इन जातियों को जिस तरह अलग रखा गया है उसे देखकर 'रंगभेद' (Apartheid) की याद ताज़ा हो जाती है। ये समुदाय अपने गांवों में नियत स्थानों, गंदे और कम सुविधाओं वाले इलाकों में रहते हैं। उन्हें सामान्य कुओं से पानी लेने या मन्दिरों में प्रवेश तक की आज़ादी नहीं है। उनका दर्जा और उनकी भूमिका हिन्दू समाज की रीति–नीति के आधार पर परिभाषित की गयी है और उसके समर्थन में धर्मग्रन्थों का हवाला दिया जाता है। कम वेतन और अकुशल व्यवसायों तक सीमित इन जातियों की पहुंच शिक्षा और अन्य सुविधाओं तक नहीं है। अगर यह संभव होता तो वे निश्चित रूप से गरीबी से ऊपर उठ सकती हैं, जो इस भेदभाव

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

का ही उत्पाद है। इन समुदायों का अपने को गरीबी के अभिशाप से बचाने या अपने बुनियादी अधिकार हासिल करने के सामूहिक प्रयासों को ऊँची जाति के हिंसात्मक तत्वों द्वारा कई बार कुचल दिया जाता है। लगातार यातना और दमन से जुड़ी उनकी सामाजिक स्थिति उन्हें दूसरों की और स्वयं की नज़रों में आत्मसम्मान रहित बना देती है। राज्य की रचनात्मक नीतियों, वैधानिक और प्रशासनिक उपायों को केवल सीमित सफलता ही मिल पायी है क्योंकि सामाजिक क्षेत्र में व्यापक स्तर पर भेदभाव बना हुआ है।

जो दलित खेती करते हैं, उनमें से केवल एक चौथाई ही ज़मीन के मालिक हैं। करीब 50 प्रतिशत दलित भूमिहीन खेत मज़दूर हैं। अन्य समुदायों की तुलना में दलितों में गरीबी का स्तर ऊंचा है (देखिए सारणी–11)। 36–38 प्रतिशत दलित गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करते हैं।[143] गरीबी और शोषण पर आधारित परम्पराओं से मजबूर होकर सबसे नीची जातियों (गुज़रात तथा उत्तरी और पश्चिमी भारत में भंगी से लेकर तमिलनाडु में सिक्कलियर समुदाय तक) को इंसान का मल मूत्र हाथ से साफ करके अपनी आजीविका कमानी पड़ रही है। शौचालयों वाली सुविकसित जल–मलव्ययन प्रणाली न होने के कारण गांवों और कस्बों के कई लोगों को जल रहित शौचालयों का ही इस्तेमाल करना पड़ता है। इनकी सफाई हर रोज़ हाथों से करनी पड़ती है। यह काम समाज के सबसे निचले स्तर के कमज़ोर सामाजिक समूहों पर थोप दिया जाता है। इससे जाति व्यवस्था में उनका निचला स्थान और भी पक्का हो जाता है। जिससे वे ऊंची जातियों की नज़र में किसी भी अन्य काम के लिए अयोग्य हो जाते हैं। हाथों से मैला उठाने तथा जलरहित शौचालयों के निर्माण को 1993 में गैर–कानूनी घोषित करने के बावजूद कई पंचायतें और नगरपालिएं उन जातियों के लोगों को भाड़े पर काम पर रखती रही हैं क्योंकि अन्य लोग इस तरह का 'घिनौना' काम करने को तैयार नहीं हैं।[144] सरकार ने खुद यह बात स्वीकार की है कि वह आठवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक (1977) हाथ से मैला उठाने की कुप्रथा का अंत करने में असफल रही हैं। अब तक हाथों से मैला उठाने वाले जिन 6.5 लाख सफाई कर्मचारियों की पहचान की गयी है, उनमें से 40 प्रतिशत से अधिक को किसी अन्य कामधंधे में लगाया जाना बाकी है।[145]

एक तिहाई से कुछ ही अधिक (37 प्रतिशत) दलित बस्तियों में प्राथमिक स्कूल हैं। केवल 6.5 प्रतिशत बस्तियों में उच्च प्राइमरी स्कूल हैं। भारत में कुल 42 लाख स्कूली शिक्षकों में से केवल 9 प्रतिशत दलित हैं।[146] हालांकि पिछले दशकों में साक्षरता के स्तर में सुधार हुआ है, लेकिन प्राइमरी स्तर पर दलित बच्चों के स्कूली शिक्षा पूरी न कर पाने की दर बहुत ज़्यादा–44.5 प्रतिशत–है। सीनियर सैकेंडरी स्तर पर शिक्षा छोड़ने वाले बच्चों की संख्या 76 प्रतिशत है। गरीबी के दुष्प्रभाव से बच्चे अपनी आगे की पढ़ाई–लिखाई पूरी करने की बजाय, पेट पालने के लिए रोज़ी कमाने को मजबूर हैं। और यह सब, प्रतिभाशाली बच्चों को छात्रवृत्तियां देने, शुल्क माफ करने और शिक्षा जारी रखने के लिए सरकार द्वारा मुफ्त कोचिंग देने जैसे प्रोत्साहनों के बावजूद हो रहा है।[147]

सरकारी कल्याण कार्यक्रमों के अर्न्तगत दलित बस्तियों और 20 प्रतिशत से अधिक दलित आबादी वाले गांवों में प्राथमिक और सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र खोले गये हैं। लेकिन राष्ट्रीय अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति आयोग के अनुसार इनमें से अधिकतर स्वास्थ्य केन्द्र कागज़ पर मौजूद हैं और न तो इनमें डॉक्टर नियुक्त किये गये हैं और न दवाएं उपलब्ध करायी गयी हैं।[148]

राष्ट्रमंडल के अनेक हिस्सों में अन्य समुदायों को भी बहिष्करण, उपेक्षा और भेदभाव की इसी तरह की स्थितियों का सामना करना पड़ रहा है। इनमें मूलनिवासी और जनजातीय लोग, रंगभेद के तहत अश्वेत लोग, जातीय अल्पसंख्यक, खानाबदोश समुदाय और प्रवासी मज़दूर शामिल हैं। राष्ट्रमंडल के कुछ हिस्सों में आज भी सामंतवादी और काश्तकारी प्रणालियां बरकरार हैं, जो सामाजिक और आर्थिक असमानताओं तथा विभिन्न रूपों में गुलामी को बढ़ावा देती हैं।

सारणी 10 भारत में सामाजिक असमानता का प्रभाव [149]

समस्या	अनुसूचित जातियां	भारत (सम्पूर्ण)
शिशु मृत्यु दर (प्रति 1000)	83	70
बाल मृत्यु दर (प्रति 1000)	119.3	94.9
कम वज़न वाले बच्चे	53.5%	47%

जैसा कि ऊपर कहा गया है, समूचे राष्ट्र मंडल में महिलाओं को पुरूषों के मुकाबले कई सदियों से संस्थानीकृत भेदभाव और उपेक्षा का सामना करना पड़ता है।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

सारणी 11 गरीबी का तुलनात्मक स्तर – ग्रामीण क्षेत्रों में दलित और अन्य लोग[150]

(225 रूपया मासिक से कम में गुज़ारा करने वाले लोग)

राज्य	दलित	अन्य *	राज्य	दलित	अन्य *
1 आन्ध्रप्रदेश	8.7%	3.6%	6 मध्यप्रदेश+ छत्तीसगढ़	16.9%	4.9%
2 बिहार+ झारखंड	19.9%	6.5%	7 महाराष्ट्र	12%	4.1%
3 गुज़रात	4.6%	1.2%	8 उड़ीसा	18%	5.2%
4 कर्नाटक	12.4%	4.2%	9 राजस्थान	3.7%	0.4%
5 केरल	4.5%	0.7%	10 तमिलनाडु	17%	2.9%
			11 उत्तरप्रदेश + उत्तरांचल	10.7%	3.7%

* इस श्रेणी में अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ी जाति शामिल नहीं हैं, लेकिन अगड़ी जातियां, मुसलमान, ईसाई, सिख और अन्य धार्मिक समूह शामिल हैं।

दलितों पर हिंसा–एक नमूना

किसी न किसी रूप में हिंसा, अपमान और मानवाधिकारों का उल्लंघन दलितों के जीवन की एक कड़वी सच्चाई है। सहस्राब्दि के अंत पर अपराध संबंधी प्रवृत्तियों के विश्लेषण से पता चलता है कि दलितों के खिलाफ हिंसा के सबसे अधिक मामले मध्यप्रदेश (44%) और राजस्थान (27%) में दर्ज़ हुए।[151] इस अवधि में दलितों की हत्या और बलात्कार के मामलों में भी इससे पहले वर्ष की तुलना में बढ़ोतरी हुई। लेकिन यह तो पानी में तैरती हिमशैल की तरह है जिसका केवल उपरी भाग नज़र आता है क्योंकि बहुत से अपराध सामने आने से रह जाते हैं। पुलिस प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज़ करने से इन्कार कर देती है। इसके अलावा, ऊंची जातियों द्वारा पीड़ितों के सामाजिक, आर्थिक बहिष्कार का भी दबाव और धमकी होती हैं।

इस अवधि के दौरान दलितों के खिलाफ किये गये अपराधों का एक नमूना इस प्रकार है :

- बिहार के आरा में ऊंची जाति के एक ज़मींदार ने एक दलित महिला से उसी के घर में सज़ा के तौर पर कथित रूप से बलात्कार किया। *उसका अपराध :* उसके पति ने अपराधी के मित्र से 100 रुपये उधार लिये थे जिन्हें वापस भी कर दिया गया था । लेकिन अपराधी इसलिए गुस्से में था कि पैसा उसे क्यों नहीं दिया गया और इसीलिए उसने दलित दम्पति को सबक सिखाना चाहा।
- हरियाणा के झज्जर में ऊंची जातियों की भीड़ ने सज़ा के तौर पर पांच दलितों की पीट–पीट कर हत्या कर दी और दो को ज़िन्दा जला दिया। *उनका अपराध :* उन्होंने मरी गाय की खाल उतारी जो कि उनका परम्परागत पेशा है।

जुलाई और दिसम्बर 2002 के बीच भारत के विभिन्न भागों में उत्पीड़न की 63 घटनाएं हुई जिनमें 1,300 से अधिक दलित प्रभावित हुए।[152] इनमें :

- 23 की हत्या की गयी और कई घायल हुए;
- 9 दलित महिलाओं के साथ बलात्कार हुआ जिनमें से 3 नाबालिग थीं;
- 8 को नंगा या अर्धनग्न अवस्था में घुमाया गया;
- 3 को पुलिस ने यातनाएं दीं और
- आर्थिक बहिष्कार के 6 मामलों का असर एक हज़ार से अधिक दलितों पर पड़ा।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

यह अफवाह फैली कि खाल निकालते समय गाय ज़िंदा थी। क्रुद्ध गांव वालों ने "गौ–हत्या करने वालों" को सबक सिखाने का फैसला कर लिया।

- तमिलनाडु के सतरसनकोट्टई में एक स्थानीय पार्षद और उसके गुंडों ने एक दलित खेत मज़दूर को कथित रूप से बुरी तरह पीटा और अधनंगा कर घुमाया।

  उसका अपराध : उसने गांव के तालाब के तल में जमा मिट्टी निकालने के लिए मशीनों के इस्तेमाल का विरोध किया और मांग की कि यह काम मजदूरों से कराया जाना चाहिए।

- तमिलनाडु के तिन्नियम में स्थानीय पंचायत की भूतपूर्व महिला सरपंच और उसके पति तथा समर्थकों ने दो दलितों को सज़ा के तौर पर बुरी तरह पीटा, लोहे की गर्म सलाखों से दागा और एक–दूसरे को मल खिलाने पर मजबूर किया।

  उनका अपराध : उसने एक ऐसे दलित का समर्थन किया जो अम्बेडकर आवास योजना के अर्न्तगत मकान प्राप्त करने के लिए भूतपूर्व सरपंच को दी गयी रिश्वत वापस मांग रहा था। जब महिला सरपंच ने रिश्वत लेकर अपना वादा नहीं निभाया तो पीड़ितों ने रिश्वत का पैसा वापस लौटाने में लोगों से समर्थन का अनुरोध करते हुए गांव भर में डुगडुगी बजाई थी।[153]

- पंजाब के मुंडखेरी गांव की पंचायत ने सज़ा के तौर पर 15 दलितों को कथित रूप से काली सूची में डाल दिया और व्यापारियों को कहा कि वे उनका आर्थिक बहिष्कार करें । काली सूची में रखे गए दलितों को 2 किलो चीनी बेचने के आरोप में एक व्यापारी पर 2,000 रुपये जुर्माना लगाया गया।

  उनका अपराध : उन्होंने स्थानीय जमींदारों द्वारा दलितों के और बंधुआ मज़दूरों के शोषण के खिलाफ आवाज उठाने में एक गैर–सरकारी संगठन का साथ दिया।

- झारखंड के सूदन में एक स्थानीय व्यापारी के गुंडों ने एक दलित महिला और उसकी बहु को कथित रूप से नंगा किया, और सामूहिक बलात्कार किया और उनके मुंह पर चूना और गोबर पोतकर पूरे गांव में नंगा घुमाया।

  उनका अपराध : उन्होंने अपना छोटा सा ज़मीन का टुकडा, जिस पर उस व्यापारी की नज़र पडी थी, उसे बेचने से इन्कार किया।

- दिल्ली विश्वविद्यालय के एक होस्टल में ऊंची जातियों के एक दर्ज़न से अधिक छात्रों ने तीन दलित छात्रों की पिटाई की।

  उनका अपराध : उन में से एक दलित होस्टल प्रेज़ीडेंट चुना गया था। दोषी लडके इस बात को लेकर कुद्ध थे कि होस्टल 'हरिजनों का अड्डा' बनता जा रहा है।

अनेक परम्परागत समुदायों में महिलाओं को उत्तराधिकार या सम्पत्ति का अधिकार नहीं है। उनके रहने के स्थान और अन्य लोगों के साथ संबंध, खासकर शादी के बाद संबंधों का निर्धारण सामाजिक रिवाजों द्वारा किया जाता है, जिनपर उनका कोई नियंत्रण नहीं होता। राष्ट्रमंडल में अनेक ऐसे स्थान हैं जहां महिलाओं को पूर्ण कानूनी अधिकार प्राप्त नहीं हैं और इस तरह वे कोई लेन देन नहीं कर सकतीं, जिसके बिना अधीनता के दुष्चक्र से उन्हें उभारा नहीं जा सकता। अनेक राष्ट्रमंडल देशों ने, इन प्रतिबंधों को समाप्त करने के लिए कानून बनाये हैं। किन्तु महिलाओं के पक्ष में सरकार की तरफ से कड़ी कार्रवाई के अभाव में, अकेले कानून से सामाजिक दृष्टिकोण या व्यवहार में परिवर्तन लाना संभव नहीं हो सकता और महिलाएं परम्परागत लोकाचार और पद्धतियों से होने वाले कष्ट उठाती हैं।

बहुजातीय समुदायों में अनेक अल्पसंख्यक समूहों को भी इसी तरह के भेदभाव झेलने पड़ रहे हैं और उन्हें विकास के उतने लाभ नहीं मिल पाते, जितने बहुसंख्यक समुदाय को मिलते हैं। उनके 'मानव विकास संकेतकों' (human development indicators)से इस बात का सतत अहसास होता है कि उनकी बहुसंख्य आबादी गरीबी में जी रही है। उदाहरण के लिए, हाल के आंकड़ों से पता चलता है कि भारत में सबसे बड़े धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय मुसलमानों (जनसंख्या का 12.12 प्रतिशत) को बहुसंख्यक समुदाय की तुलना में

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

महिलाओं का स्थान

अगर अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों का सम्मान किया जाना है और महिलाओं की स्थिति में सुधार लाना है तो प्रत्येक कानून और प्रत्येक आर्थिक नीति को 'अधिकारों के दृष्टिकोण' से परखा जाना चाहिए ताकि यह साबित हो सके कि इससे महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार होगा या नहीं। राष्ट्रमंडल के कई देशों में महिलाओं को संपत्ति विरासत में तभी मिलती है जब पिता या पति की मृत्यु हो जाती है। ये देश परम्परागत/व्यक्तिगत कानून पर अमल करना अधिक पसंद करते हैं जो कि उनकी अन्तर्राष्ट्रीय बचनबद्धता के अनुरूप नहीं है। नीचे दिये गये उदाहरण से यह अर्थ कदापि नहीं लगाया जाना चाहिए कि इस छोटे से अनुच्छेद में जो देश शामिल नहीं किये गये हैं वे महिलाओं को ये अधिकार दिलाने के लिए कोई खास प्रयास कर रहे हैं।

राष्ट्रमंडल के अफ्रीकी देश

- ज़िम्बाबवे के उच्च न्यायालय ने (*मगाया बनाम मगाया* मामले में) सामुदायिक अदालत के उस फैसले को उलट दिया जिसमें एक महिला को अपने मृत पिता की संपत्ति का उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया था और उसके स्थान पर यह कहते हुए उसके छोटे सौतेले भाई को उत्तराधिकारी बनाया कि परम्परागत कानून में "महिला उत्तराधिकारियों पर पुरुष उत्तराधिकारियों को प्राथमिकता दी जाती है।"
- नाइजीरिया में एक के बाद एक कई सरकारों ने असमानता दूर करने के लिए कई कार्यक्रम लागू किये, मगर स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया है। नाइजीरिया के कई राज्यों में महिलाएं अपने मृत पति की संपत्ति की उत्तराधिकारी नहीं बन सकतीं। जन्म के समय ही विवाह तय हो जाते हैं और 19 वर्ष की उम्र में औपचारिक रूप से विवाह की रस्म होती है। इसका लड़कियों की शिक्षा पर बुरा असर पड़ता है। सरकारी सेवा संबंधी कर प्रावधानों में भी बाल कल्याण कार्यक्रम का लाभ पुरुष कर्मचारियों को दिया जाता है। भेदभाव वाले प्रावधानों में महिला पुलिसकर्मियों को बिना इजाज़त विवाह करने की मनाही है।
- सिएरा लियोन में देहातों में रहने वाली महिलाएं ज़मीन की मालिक या नियंत्रक नहीं बन सकती, मगर वे परिवार के पुरुष मुखिया के ज़रिए इसका उपयोग कर सकती हैं। इस्लामी विवाह कानून के अनुसार कोई महिला अपने मृत पति की संपत्ति का नियंत्रण नहीं कर सकती और न ही उसकी संपत्ति की उत्तराधिकारी बन सकती है।[154]

राष्ट्रमंडल के दक्षिण एशियाई देश

- बांगलादेश में इस्लामी परिवारिक कानूनों पर आधारित राज्य कानूनों के अनुसार महिलाएं पैतृक संपत्ति में से अपने भाइयों के मुकाबले केवल आधी संपत्ति पाने की हकदार हैं। जहाँ कहीं समुदाय विशेष के व्यक्तिगत कानूनों को प्राथमिकता मिलती है, वहाँ उत्तराधिकार के मामले में उनसे भेदभाव बरता जाता है।[155]
- पाकिस्तान में सिंध और बलूचिस्तान के ग्रमीण इलाकों में महिला साक्षरता सिर्फ 2% है। 40% से अधिक माता–पिता ने बताया कि बालिकाओं को स्कूल भेजने का कोई 'आर्थिक फायदा' नहीं है। यह बात इस्लामाबाद के नेशनल इंस्टीट्यूट ऑव साइकोलॉजी द्वारा कराये गये सर्वेक्षण से पता चलती है।[156]
- परिवार का भरण–पोषण करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं को पुरुषों के मुकाबले अधिक घंटे काम करना पड़ता है। उत्तर भारत के हिमालय क्षेत्र में कृषि संबंधी गतिविधियों के बारे में एक अध्ययन से पता चलता है कि महिलाएं एक हैक्टेयर के खेत में हर साल 3,485 घंटे कार्य करती हैं जबकि पुरुष इसके आधे से भी कम (1,112 घंटे) कार्य करते हैं। बैलों की एक जोड़ी साल में केवल 1,064 घंटे कार्य करती है। फिर भी महिलाओं को परिवार की संपत्ति में बराबरी का अधिकार नहीं मिलता। कई आदिवासी समाजों के परम्परागत कानून में महिलाओं को पैतृक भूमि में हिस्सा और काश्तकारी का हक नहीं दिया जाता। राज्यों के कानून, जैसे *छोटानागपुर काश्तकारी कानून*, 1908 और *संथाल परगना काश्तकारी अधिनियम*, 1949 से भी इस प्रथा को संरक्षण मिला है।[157]
- पाकिस्तान के ग्रामीण क्षेत्रों में कई लड़कियों की पवित्र कुरान के साथ शादी कर दी जाती है और उसके बाद उन्हें अपने पिता और भाइयों सहित 14 वर्ष से अधिक उम्र के पुरुषों से सम्पर्क करने की मनाही होती है। शादी का आर्थिक बोझ उठाने में असमर्थ गरीब

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

परिवार इस प्रथा का सहारा लेते हैं। धनी परिवार बेटी के हिस्से की संपत्ति, खासतौर पर ज़मीन, परिवार में बनाए रखने के लिए ऐसा करते हैं।[158]

- श्रीलंका में महिलाएं शेष दक्षिण एशिया की महिलाओं से अपेक्षाकृत बेहतर स्थिति में हैं। उनकी साक्षरता का स्तर ऊंचा है और माताओं की मृत्यु दर काफी कम है। लेकिन महिलाओं के अधिकारों पर प्रभाव डालने वाली कानूनी असमानताएं पूरी तरह दूर नहीं हुई हैं। 1943 के भूमि विकास अधिनियम (*Land Development Ordinance*) के अर्न्तगत नयी बस्तियों में भूमि प्रवासी परिवार के पुरुष मुखिया को आवंटित की जाती है। अगर महिलाओं की अपने पैतृक गांव/कस्बे में जमीन पहले से न हो, तो वह उत्तराधिकारी नहीं बन सकती ।[159]

अधिक उपेक्षा का सामना करना पड़ता है। गांवों में रहने वाली 20 प्रतिशत सर्वाधिक निर्धन आबादी में मुसलमानों की संख्या (29 प्रतिशत) हिन्दुओं से अधिक है (26 प्रतिशत)। शहरी क्षेत्रों में सबसे गरीब मुसलमानों की आबादी निर्धनतम हिंदुओं से दुगुनी है। भूमिहीन या बहुत कम जोत वाले मुसलमानों का अनुपात 51 प्रतिशत है, जबकि हिन्दुओं में केवल 40 प्रतिशत इस श्रेणी में आते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में 48 प्रतिशत मुसलमान लिख–पढ़ नहीं सकते, जबकि हिन्दुओं में निरक्षरता दर 44 प्रतिशत है। गांवों में करीब दो तिहाई मुसलमान महिलाएं शिक्षा से वंचित हैं, जबकि शहरों और कस्बों में यह संख्या लगभग 45 प्रतिशत है।[160]

एच आई वी/एड्स

एच आई वी/एड्स महामारी के कारण लोगों के गरीबी में रहने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। यह घातक रोग मुख्य रूप से राष्ट्रमंडल में केन्द्रित है और इससे सामाजिक सम्बद्धता और अतीत में की गई प्रगति को बनाए रखने अथवा तेजी से आर्थिक विकास करने की क्षमता को खतरा पैदा हो गया है। एच आई वी/एड्स संक्रमित 60 प्रतिशत मामले राष्ट्रमंडल देशों में पाए गए हैं। भारत, केन्या, नाइजीरिया और दक्षिण अफ्रीका, प्रत्येक में 20 लाख संक्रमित वयस्क हैं। बोत्स्वाना, लेसोथो, स्वाज़ीलैंड, जाम्बिया और ज़िम्बाब्वे ऐसे देश हैं, जहां 5 में से 1 वयस्क को एच आई वी है। यह रोग बड़ी तेजी और अनुमान से अधिक तीव्रता से फैल रहा है। अफ्रीका से बाहर कैरेबियाई देशों में एच आई वी/एड्स के संक्रमण की दर सबसे अधिक है।

यह स्वाभाविक है कि इस महामारी से सर्वाधिक गंभीर रूप से प्रभावित देश और व्यक्ति सबसे अधिक गरीब भी हैं। वे बीमारी की रोकथाम और उसका प्रभाव कम करने के लिए आवश्यक स्वास्थ्य देखभाल भी नहीं जुटा पाते। विशेष रूप से अफ्रीका में इस बीमारी के प्रभाव से 'प्रत्याशित आयुदर' में भारी गिरावट आयी है, कुशल मज़दूरों की संख्या घटी है और ऐसे लोगों पर भारी बोझ पड़ा है, जिसे बर्दाश्त करने की क्षमता उनमें बिल्कुल नहीं है। अकेले नाइजीरिया और युगांडा में, प्रत्येक में 9,00,000 अनाथ हैं। कुछ देशों में एच आई वी, बड़े आश्चर्यजनक ढंग से महिलाओं का रोग बनता जा रहा है, हालांकि इसका प्रसार मुख्य रूप से पुरूष–व्यवहार के कारण होता है। अफ्रीका के उप–सहारा क्षेत्र में पुरूषों की तुलना में महिलाएं (55 प्रतिशत) एड्स से अधिक प्रभावित हुई हैं, जो विश्वव्यापी प्रवृत्ति से विपरीत है। 1999 में इस बीमारी का शिकार हुए 21 लाख लोगों में 52 प्रतिशत महिलाएं थीं। अफ्रीका में कुछ स्थानों पर कम आयु समूहों में महिला/पुरूष रोग संक्रमण का अनुपात 16:1 है। केन्या के कुछ हिस्सों में 15 और 19 की उम्र की चार में से एक लड़की संक्रमित है, जबकि इसी आयुवर्ग के लड़कों में यह संक्रमण 25 में 1 लड़के को है। जैविक दृष्टि से विपरीत लिंगीय संभोग द्वारा महिलाओं में एच आई वी संक्रमण की अधिक आशंका होती है। सेक्स वर्करों में पुरूषों के मुकाबले महिलाओं की संख्या अधिक है। गरीबी की बेबसी से जुड़ी वेश्यावृत्ति के कारण महिलाओं को संक्रमण की आशंका अधिक रहती है। जिन देशों में सेक्स वर्कर अधिक संख्या में हैं और पुरुष प्रधानता की परम्परा अधिक गहरी है, वहां खासकर सेक्सवर्कर के लिए बचाव के प्रमुख साधन कंडोम को इस्तेमाल करने का आग्रह करना मुश्किल होता है। सांस्कृतिक रिवाजों, जैसे महिला यौनांग का खतना या 'वैधव्य विरासत' (widow inheritance) की भी इस बीमारी के संचार में भूमिका है। एच आई वी के अधिक मामले उन स्थानों पर पाए जाने की आंशका रहती है जहां चलते–फिरते या प्रवासी मज़दूरों (उदाहरण के लिए भारत और पूर्वी अफ्रीका में ट्रक ड्राइवर या दक्षिण अफ्रीका में खान मज़दूरी) की संख्या अधिक होती है। ये श्रमिक मूल देश में गरीबी के कारण प्रवासी बनते हैं।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

स्वास्थ्य का अधिकार

राष्ट्रमंडल के अंतर्गत आने वाले अफ्रीका और एशिया के जिन इलाकों में काफी बड़ी तादाद में लोग एच आई वी संक्रमण से ग्रस्त हैं, वहां एड्स के नियंत्रण की नीतियां बनाते समय ब्राज़ील से बहुत कुछ सीखा जा सकता है।

ब्राज़ील में एड्स के पहले मामले का पता 1980 में चला। 1994 में विश्व बैंक ने अनुमान लगाया था कि सन् 2000 तक ब्राज़ील में संक्रमण से ग्रस्त लोगों की संख्या 12 लाख हो जाएगी (जनसंख्या : 13.3 करोड़)। आज इनकी वास्तविक संख्या आधे से भी कम हो गयी है। एड्स से संबंधित बीमारियों से होने वाली मृत्यु भी आधा हो गयी है और केवल 20,000 नये मामले हर साल दर्ज़ हो रहे हैं। इससे इस महामारी के प्रकोप पर अंकुश लगने का पता चलता है। एड्स के रोगियों का इलाज जल्द शुरू हो जाने और अस्पतालों में भर्ती होने वाले रोगियों की संख्या में कमी से ब्राज़ील में सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा के खर्च में करीब 19 करोड़ रुपये की बचत हुई है। आखिर यह चमत्कार कैसे हुआ?

ब्राज़ील की सफलता के पीछे एक सबसे महत्वपूर्ण कारण उसका राजनीतिक संकल्प है। 1996 में ब्राज़ील की संसद ने एक कानून पारित किया जिसमें एड्स रोगियों को अत्याधुनिक उपचार की गारंटी दी गयी। इस इलाज में विकासशील देशों में सालाना 10,000 से 15,000 अमेरिकी डॉलर का खर्च आता है। ब्राज़ील पेटेंट की गयी एंटी–रिट्रोवायरल दवाओं की जेनिरिक किस्म तैयार कर लागत में 79 प्रतिशत की कमी करने में सफल रहा है। बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनियों की ओर से भारी दबाव और विरोध के बावजूद, जिसमें कुछ समय तक अमेरिकी व्यापार प्रतिनिधि का कार्यालय भी शामिल था, ब्राज़ील ने सभी जरूरतमंदों के लिए दवा उपलब्ध कराने की व्यवस्था की है। (ब्राज़ील के पेटेंट कानून को 1997 में ट्रिप्स समझौते के अनुरूप बना दिया गया है।) संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकर आयोग द्वारा जेनेरिक दवाओं के उत्पादन की ब्राज़ील की रणनीति को अनुमोदन मिल जाने के बाद, कुछ बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनियों ने भी अपने उत्पाद कम दामों पर बेचना शुरू कर दिया है। इससे यह धारणा गलत साबित हो गयी है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा दवाओं की कीमतें सिर्फ उत्पादन पर आधारित लागत से निर्धारित होती हैं।

ब्राज़ील की एड्स नियंत्रण और रोकथाम नीति की रूपरेखा बनाने का श्रेय सिविल सोसाइटी संगठनों को जाता है । इसका नेतृत्व प्रारंभ में समलैंगिकों के समुदाय द्वारा किया गया था। सरकार के सहयोग से इस तरह के करीब 600 संगठन समग्र स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराने में लगे हैं। इससे रोगियों की विभिन्न प्रकार की आवश्यकताएं–जैसे औषधि चिकित्सा, अस्पताल में भर्ती करने, परामर्श, बहिरंग रोगियों की निगरानी, सही समय पर दवा खिलाने का पूरा ध्यान रखने आदि–पूरी हो रही हैं। पिछले आठ वर्षों में सिविल सोसाइटी संगठनों की परियोजनाओं के अंतर्गत 20,00,000 लोगों को विशिष्ट प्रशिक्षण दिया गया है और करीब 5 लाख लोगों को सूचना सामग्री बांटी गयी है। गरीब रोगियों को विशेष सुविधाएं, जैसे मुफ्त बस पास, भोजन और शिशु आहार प्रदान की जा रही हैं। उन्हें एल्कोहॉलिक्स एनॉनिमस की तरह के समूहों में परामर्श दिया जा रहा है।

एड्स क्लीनिकों के राष्ट्रव्यापी नेटवर्क के जरिए अधिक जोखिम वाले वर्ग, जैसे व्यावसायिक सैक्स वर्करो, मादक पदार्थ का सेवन करने वालों, ट्रक ड्राइवरों, गर्भवती और शिशुओं को स्तन पान कराने वाली माताओं, बेसहारा लोगों, कैदियों, छात्रों और अन्य लोगों को सुविधाएं उपलब्ध कराई जा रही हैं। राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा हॉटलाइन को अब तक 2 लाख संदेश प्राप्त हुए हैं। 65 प्रतिशत गतिविधियां व्यवहार संबंधी हस्तक्षेप और सार्वजनिक शिक्षा से संबंधित हैं जिससे मुख्य जोर रोकथाम पर दिया जा रहा है। निजी क्षेत्र और ब्राज़ील की सेना के साथ कार्य करते हुए राष्ट्रीय समन्वय संगठन ने एड्स के बारे में करीब 35 लाख कार्यकर्ताओं और 700,000 सैनिकों को कंडोम और सूचनाएं बांटी हैं। एड्स के बारे में जागरूकता पैदा करने के अभियान से इस बीमारी से जुड़े कलंक को कुछ हद तक दूर करने में सफलता मिली है।

ब्राज़ील ने यह साबित कर दिया है कि कई दशकों के सैन्य शासन से उबर कर निकला कोई देश स्वास्थ्य सेवा के बारे में 'अधिकार' की धारणा अपना कर एड्स की चुनौती का सामना कर सकता है। इससे जो बड़ा सबक सीखना है, वह यह है कि किस तरह राजनीतिक इच्छाशक्ति से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और पेटेंट व्यवस्था से उत्पन्न बाधाओं को पार किया जा सकता है और नागरिकों का कल्याण सुनिश्चित किया जा सकता है। कोई सरकार हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहने की बजाय बहुत कुछ कर सकती है।

जहां कहीं कोई छोटी सी पहल भी की गयी है, नतीजे साफ नजर आते हैं। अगर राष्ट्रमंडल गरीबी दूर करने के बारे में संजीदा है तो एड्स से बचाव के लिए कम लागत वाले और कारगर राष्ट्रीय कार्यक्रमों और नीतियों के लिए अधिक मात्रा में संसाधनों, अंतर्राष्ट्रीय सहयोग तथा एकजुटता ज़रूरी होगी।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

एच आई वी का गरीबी से संबंध कई तरह से काम करता है। यह सच है कि एड्स किसी को सिर्फ इसलिए नहीं होता कि वह गरीब है। इस बीमारी का शिकार होने की आशंका अज्ञानता, सामान्य अस्वस्थता, यौन संपर्क से इन्कार न कर सकने या सुरक्षा अपनाने में अक्षमता, स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं में कमी – जिससे एच आई वी/एड्स का पता न लगाया जा सके–, या गर्भवती महिलाओं को 'एंटी–रीट्रोवाइरल दवाएं प्रदान न किया जाना – जिससे उन्हें एच आई वी पाजिटिव शिशु को जन्म देना पड़ता है–आदि कारणों से कई गुणा बढ़ जाती है। एड्स के बारे में बातचीत करने में अक्षमता या अरुचि अथवा समाज या सरकार द्वारा इस समस्या के मौजूद होने से साफ इन्कार करना, एड्स ग्रस्त लोगों को अंधकार में रखना है, जिससे बीमारी के प्रसार का खतरा बढ़ जाता है। लोगों को शिक्षित बनाने के उपायों में कमी होने से बीमारी की गंभीरता का अहसास सार्वजनिक तौर पर नहीं होता।

गरीब देश में एक बार एच आई वी पहुंचने के बाद यह अवश्यंभावी है कि अमीर देश के मुकाबले उसका असर अधिक विनाशकारी होगा। एड्स का प्रसार तेजी से होता है और अवसरवादी बीमारियों का हमला होते ही एड्स बड़ी तेजी से मार डालता है। बीमार होने पर मरीज़ के इलाज और देखभाल में अधिकाधिक श्रमिक दिन नष्ट हो जाते हैं।

एच आई वी महामारी आर्थिक विकास पर बड़ा ज़बरदस्त असर डालती है। यह चुन–चुन कर मानवीय संपदा को नष्ट कर देती है। इसका मुख्य निशाना युवा वयस्क होते हैं जो कि जनसंख्या का सबसे उत्पादक वर्ग माने जाते हैं। इस बीमारी की चपेट में आने से उनकी उत्पादकता बड़ी कम हो जाती है और अंततः असामयिक मृत्यु से मानवीय संसाधन संपत्ति का नुकसान होता है। कम लोगों के बचे रहने से अर्थव्यवस्था का संकुचन होता है, परिणामस्वरूप सरकारी राजस्व के लिए कर–आधार कमज़ोर पड़ता है। महामारी के दुष्प्रभाव संक्रमित व्यक्तियों की पहली पीढ़ी से भी आगे असर डालते हैं। एच.आई.वी. से मनुष्य की पूंजी निर्माण क्षमता भी नष्ट हो जाती है। माता–पिता में से किसी एक या दोनों की मृत्यु से बच्चे उनकी स्नेहपूर्ण देखभाल और ज्ञानप्राप्ति के आधार से वंचित रह जाते हैं। परिवार की आमदनी के नुकसान का मतलब अंततः यह होता है कि उनके स्कूल में पढ़ने की संभावनाएं कम हो जाती हैं। शिक्षा की कमी से अनाथ बच्चों की इस पूरी पीढ़ी की उत्पादकता कम हो जाती है और गरीबी को काबू करने की उनकी क्षमता भी सीमित हो जाती है। संसाधनों की कमी के कारण इस बीमारी से लड़ने तथा अनाथ बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता में पहले से कमज़ोर पड़ रही सरकार को कम उत्पादकता के कारण सीमित होते कर–आधार और धनाभाव का सामना करना पड़ता है। इसका नतीजा यह होता है कि मानवीय विकास के साथ अन्य पक्षों पर सरकारी खर्च पर बुरा प्रभाव पड़ता है। असमानता बढ़ती है। इस तरह एक दुष्चक्र शुरू हो जाता है और अगर महामारी को अनियंत्रित छोड़ दिया जाए तो इस बात की पूरी संभावना है कि समूची अर्थव्यवस्था तीन पीढ़ियों में भरभराकर ढह जाएगी।[161]

एच आई वी महामारी का विकास दर पर कई तरह से दुष्प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव सिर्फ समर्थ वयस्कों को जवानी में ही मौत के घाट उतारने तक सीमित नहीं रहता। स्वाज़ीलैंड का अनुमान है कि उसे सेवाओं का 1997 का स्तर बनाए रखने के लिए अगले 7 वर्षों में सामान्य के दोगुने से अधिक शिक्षकों को प्रशिक्षण देना होगा। स्वाज़ीलैंड को सन् 2016 तक अतिरिक्त वेतन और प्रशिक्षण लागत के रूप में खजाने से 23.3 करोड़ अमेरिकी डॉलर निकालने होंगे–जो 1998–1999 के दौरान सामान और सेवाओं के कुल सरकारी बजट से अधिक है। जाम्बिया के 30 प्रतिशत शिक्षक एच आई वी से ग्रस्त हैं–और उनकी नियति उन्हें मृत्यु की ओर ले जायेगी। शिक्षकों की संख्या में कमी और हज़ारों अनाथों की मौजूदगी से जाम्बिया जैसे देश को सकल घरेलू उत्पाद में भारी कमी की समस्या से जूझना पड़ेगा। तंजानिया में 6 कम्पनियों के सर्वेक्षण से पता चला है कि एड्स के कारण 1993 और 1997 के बीच प्रति कर्मचारी औसत वार्षिक चिकित्सा खर्च तीन गुणा बढ़ गया, जबकि कम्पनियों के शव–संस्कार खर्च में 5 गुणा वृद्धि हुई। जाम्बिया के बार्कलेज बैंक को एड्स के कारण अपने 25 प्रतिशत वरिष्ठ प्रबन्धकों को गंवाना पड़ा। अनुमान है कि बोत्स्वाना में, अगले 10 वर्षों में बजट का 20 प्रतिशत हिस्सा एड्स महामारी पर खर्च करना होगा। दक्षिण अफ्रीका में एड्स के कारण सन् 2010 में सकल घरेलू उत्पाद में 17 प्रतिशत गिरावट आयेगी और अर्थव्यवस्था को 22 अरब अमेरिकी डॉलर की क्षति पहुंचेगी। एड्स का सामना करने के लिए पर्याप्त धन आवंटित करने की आवश्यकता होगी। संयुक्त राष्ट्र एड्स सहायता कार्यक्रम ने अनुमान लगाया है कि उसे कैरेबियाई देशों में प्रतिवर्ष एच आई वी के खतरे को कम करने के लिए रोकथाम उपायों पर 1.5 अरब अमेरिकी डालर और इतनी ही राशि रोग–प्रशमन उपायों पर खर्च करनी होगी।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

एड्स रोकथाम के लिए रोग की पहचान, रोग तथा रोगियों की वास्तविकता को स्वीकार करना भी महत्वपूर्ण है ताकि सस्ती दवाएं और उन्हें सभी तक उपलब्ध कराने की सार्वजनिक नीतियां अपनाई जा सकें। हाल ही में कैरेबियाई देशों के स्वास्थ्य मंत्रियों ने महामारी से निबटने की राजनीतिक इच्छा व्यक्त की। उन्होंने यह तथ्य स्वीकार किया कि अगर संक्रमण की वर्तमान दर जारी रही तो पिछले दशकों में हासिल क्षेत्रीय विकास की उपलब्धियां चौपट हो जायेंगी। दानदाता और सरकारें अब कार्य योजनाएं बना रही हैं। इनसे स्थिति में सुधार होने की संभावना है। अफ्रीकी उपसहारा क्षेत्र के देशों के मुकाबले एच आई वी/एड्स का स्तर दक्षिण एशिया में कम है, लेकिन इस बीमारी पर काबू पाना एक अत्यंत महत्वपूर्ण चुनौती है।

पर्यावरण का विनाश

पर्यावरण का विनाश आज सारी दुनिया की चिंता का विषय बन गया है। संसाधनों की छीनाझपटी और दुरुपयोग हिंसक टकराव का कारण बन रहे हैं। वहीं अबतक जो संसाघन सामुदायिक संपत्ति माने जाते थे, उनके निजी हाथों में पहुंचकर अंधाधुंध इस्तेमाल तथा लूट खसोट से समाज के अभावग्रस्त समुदायों में गरीबी बढ़ी है और उनके मानवाधिकारों का उल्लंघन हुआ है।

अनेक अध्ययनों से पर्यावरण और गरीबी के बीच संबंध होने का पता चला है। विश्व बैंक का कहना है कि ''दुनिया के करीब 2.8 अरब लोगों पर–जो कि रोज़ाना दो डॉलर से भी कम पैसों से अपना गुज़र–बसर करते है– पर्यावरण की खराब हालत का अन्य लोगों के मुकाबले अधिक बुरा असर पड़ता है।''[162] इसका एक कारण यह है कि विकासशील देशों के ऊपर कर्ज़ का जो भारी बोझ जमा हो गया है, उसे चुकाने के लिए अक्सर प्राकृतिक संसाधन बेचे जाते हैं या बहुत ही सस्ते दामों में खनन और वनों की कटाई की इजाज़त दे दी जाती है। आज जब विदेशी निवेश आकृष्ट करना अनिवार्य होता जा रहा है, तो ऐसे में राज्य पर्यावरण संरक्षण पर ज़्यादा जोर नहीं दे सकता, भले ही वह उनकी सही तरह से देखभाल करने में सक्षम क्यों न हो। विदेशी मुद्रा कमाने के मकसद से निर्यात के लिए उगाई जाने वाली फसलों से 'खाद्य सुरक्षा में कमी आयी है। प्राकृतिक संसाधनों के निजीकरण से गरीबों के लिए परम्परागत जड़ी–बूटियां खोजना मुश्किल जाता है। एक तो इन लोगों के पास इन जड़ी–बूटियों का कोई अन्य विकल्प भी नहीं है और दूसरी तरफ बौद्धिक संपदा अधिकारों की नयी व्यवस्था ने इन चीजों पर उनके मालिकाना अधिकार को छीन लिया है। यह अभी पूरी तरह स्पष्ट नहीं है कि क्या गरीब–या उनकी गरीबी से पर्यावरण क्षतिग्रस्त होता है या नहीं। पर्यावरण की दृष्टि से समाज के ऐसे तबके जो ज्यादा कमज़ोर माने जाते हैं, उनमें महिलाएं, बच्चे, आदिवासी और अन्य उपेक्षित लोग शामिल हैं। और विडम्बनात्मक सच्चाई यह है कि वे परियोजनाएं जो समाज के कुछ ज़रूरतमंद समूहों के कल्याण के लिये तैयार की गयी हैं – जो शायद सफल भी होंगी – और वे योजनाएं जो पर्यावरण सुधार के लिए बनायी गयी हैं, इन्हीं समूहों के वातावरण को और बिगाड़ सकती हैं। इस के कारण सामाजिक विषमताएं तथा अंतर बढ़ सकते हैं।

तेल और खनिजों की खोज के कार्यों का विनाशकारी प्रभाव उत्पन्न करने का भी रिकार्ड होता है । इनसे प्राकृतिक संतुलन नष्ट हो जाता है, जल प्रदूषित होता है और खेती की ज़मीन नष्ट हो जाती है। प्रेस जगत में बहुत अधिक आलोचना के बावजूद सरकारों और बड़े बहुराष्ट्रीय निगमों के लालच की वजह से अंधाधुंध दोहन का यह सिलसिला जारी है। नाइजर नदी के थाले, ओक टेडी और पापुआ न्यूगिनी में पनगुना खानों में जो कुछ हुआ है, वह इसका उदाहरण है। इससे स्थानीय लोगों और पर्यावरण के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है।

एक तरफ औद्योगिक देशों मे रहने वाली दुनिया की 16 प्रतिशत जनसंख्या कुल औद्योगिक कचरे का दो तिहाई हिस्सा उत्पन्न करती है। 'ग्लोबल वार्मिंग' यानी धरती के तापमान में असामान्य बढ़ोतरी के लिए ज़िम्मेदार गैसों में से एक तिहाई भी इन्हीं देशों में उत्पन्न होती हैं और विश्व में खनिज ईंधन का आधे से अधिक हिस्सा ये लोग चट कर जाते हैं। दूसरी तरफ, अपना अस्तित्व बनाए रखने के संघर्ष में गरीब लोग अपने दुर्लभ संसाधनों का जरूरत से ज्यादा इस्तेमाल करने को मजबूर हो जाते हैं, क्योंकि ''आसपास का पर्यावरण ही उनके संसाधनों का आधार है और उसी से उनकी गुज़र –बसर होती है। इसके अलावा उनके पास कोई चारा भी नहीं होता।''

विश्व स्तर पर जलवायु में बदलाव का असर पहले से गरीबी में जीवन बिता रहे लोगों पर सबसे अधिक पड़ने की आशंका है। राष्ट्रमंडल के कुछ सबसे गरीब देशों के सामने सबसे अधिक खतरा है। बांगलादेश इनमें से सबसे अधिक उल्लेखनीय है। समुद्री तूफानों की वजह

cyan black

से उसकी 16 प्रतिशत जमीन के नष्ट होने का खतरा है। यह वह इलाका है जहां सबसे अधिक गरीब लोगों की आबादी रहती है। राष्ट्रमंडल के कुछ द्वीपदेशों के लिए तो अस्तित्व का संकट उत्पन्न हो गया है, क्योंकि समुद्र का जल स्तर बढ़ने से उनके डूबने की आशंका है। जलवायु में बदलाव का अर्थ है जलवायु में कई तरह के नये या अधिक खतरनाक दुष्प्रभाव, जैसे सूखा और तूफान। इनमें से कई का असर उष्णकटिबंधीय देशों पर तो अधिक होगा ही और सारे संसार के कमज़ोर वर्गों पर भी बुरा असर पड़ेगा।[163]

नदियों पर बनने वाले बांधों की सीमित उपयोगिता और दुष्प्रभावों के बारे में प्रतिकूल प्रचार की वजह से हालांकि यह लगता है कि ये अब उतने 'फैशनेबल' नहीं रह गये हैं, फिर भी अभी राष्ट्रमंडल देशों में आश्चर्यजनक रूप से बड़ी संख्या में बांधों का निर्माण राष्ट्रमंडल देशों की ही वित्तीय सहायता या गारंटी से अब भी हो रहा है। इनके 'विकास संबंधी' चाहे जो लाभ हों, मगर ऐसे कई समुदाय हैं जिनके पर्यावरण, संस्कृति और रोजीरोटी को जलाशय में पानी के भराव से नुकसान हो सकता है। हालांकि उनको होने वाले नुकसान की भरपाई के लिए कदम उठाये जाते हैं, मगर ये अक्सर अपर्याप्त, सूझ–बूझ की कमी वाले और सांस्कृतिक दृष्टि से अनुचित साबित हुए हैं।[164]

दक्षिण एशिया में पर्यावरण ह्रास : कुछ तथ्य और आंकड़े

वनाच्छादित क्षेत्र का ह्रास

- 20वीं सदी के प्रारंभ में श्रीलंका में तीन–चौथाई भूमि में सघन वन थे। आज इस द्वीप राष्ट्र में वनाच्छादित क्षेत्र 20% से भी कम रह गया है। बड़ी जल–विद्युत परियोजनाओं के निर्माण, उद्योगीकरण की दिशा में व्यापक अभियान और सरकार के गरीबी–हटाओ अभियान के रूप में ग्रामीण समुदाय को फिर से बसाने की अनुचित ढंग से नियोजित योजनाओं के कारण वन–भूमि का ह्रास हुआ है।[165]
- भारत में वनाच्छादित क्षेत्र मात्र 20% है, जबकि इसके लिए आदर्श स्थिति 33% वन–भूमि को माना गया है। अवैध रूप से लकड़ी काटने, खदानों के पट्टे देने, मवेशियों द्वारा अत्यधिक चरायी किए जाने और अन्य विकास गतिविधियों की वजह से वनाच्छादित क्षेत्र कम होता गया है, जिसकी परिणति भूमि–क्षय, रेगिस्तान के प्रसार और देश के कई हिस्सों में अन्य नकारात्मक प्रभावों के रूप में हुई है।[166]

भूमि ह्रास :

- भारत के भू–भाग के एक–चौथाई से अधिक क्षेत्र का प्राकृतिक और मानव घटकों, दोनों की वजह से ही व्यापक ह्रास हुआ है। पाकिस्तान में 6.2 करोड़ हैक्टेयर भूमि में से 86% के गंभीर क्षय के कारण खुश्क भूमि में रूपान्तरित होने की आशंका है।[167] श्रीलंका में भूमि–क्षय के कारण करीब एक–तिहाई ज़मीन पर असर पड़ा है। दक्षिण एशिया में भूमि –क्षय से हर वर्ष 1,000 करोड़ अमेरिकी डॉलर का नुकसान होता है।[168]

भूमिगत जल–संसाधनों का ह्रास :

- हरियाणा, राजस्थान, पंजाब और गुज़रात के कई हिस्सों में घरेलू और सिंचाई के प्रयोजन के लिए भूमिगत जल संसाधनों का अत्यधिक दोहन किया गया है। सन् 2015 तक भारत में एक तिहाई से अधिक ब्लॉक अपने भूमिगत जल–संसाधनों का अत्यधिक दोहन कर चुके होंगे (अर्थात् वर्तमान क्षमता का 85 प्रतिशत से अधिक जल निकाल चुके होंगे)।

वायु प्रदूषण :

- अनुमान है कि विश्व भर में वायु प्रदूषण से होने वाली 8,00,000 मौतों में से 1,50,000 दक्षिण एशिया में होती हैं। प्रदूषित वायु से श्वास संबंधी अनेक बीमारियां होती हैं, जिनके लिए बार–बार और विशेष चिकित्सा उपचार की आवश्यकता पड़ती है। बच्चों और ग्रामीण निर्धनों पर सर्वाधिक दुष्प्रभाव पड़ता है। भारत के मात्र 12 बड़े शहरों में वायु प्रदूषण से 200 करोड़ अमेरिकी डॉलर मूल्य की उत्पादकता की क्षति होती है और औषधियों पर खर्च बढ़ता है।[169]

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

समुद्री पारिस्थितिकी का ह्रास :

- कृषि कार्यों के लिए प्रयुक्त जल के बहाव के साथ करीब 1800 टन कीटनाशक बंगाल की खाड़ी में गिरते हैं। तेल टैंकरों की दुर्घटनाओं और रिसाव के कारण करीब 50 लाख टन तेल अरब सागर में मिल जाता है। ये और अन्य प्रदूषक सागरों और हिन्द महासागर में गिरकर मछली संसाधनों को विषाक्त करते हैं, कच्छ वनस्पति (mangrove) का ह्रास करते हैं और समुद्री पारिस्थितिकी प्रणाली के संतुलन को बिगाड़ते हैं।[170]

जैव विविधता का ह्रास :

- धरती की कुल पशु प्रजातियों का 7.31% और पादप प्रजातियों का 10.38% भारत में हैं। 200 से अधिक पादप और इतनी ही संख्या में पशु प्रजातियों का नाम उन प्रजातियों की लाल–सूची में शामिल है, जिनका अस्तित्व खतरे में पड़ा हुआ है। बांगलादेश में 175 पशु प्रजातियां समाप्त होने के कग़ार पर हैं।[171]

शहरीकरण और उसका पर्यावरण पर असर :

- कोलम्बो की 50% से अधिक आबादी तंग बस्तियों और अनाधिकृत कालोनियों में रहती है। 2015 तक करीब 45% श्रीलंकाई शहरों में रह रहे होंगे।[172] सहस्राब्दि के अंत तक 30–35 करोड़ के बीच भारतीय शहरों में रह रहे थे। अनुमान है कि 2015 तक जीविका की तलाश में गांवों से लोगों के शहरों में पलायन के कारण जनसंख्या का आधे से अधिक हिस्सा शहरों में रह रहा होगा। आबादी का तीसरा हिस्सा तंग बस्तियों और अनाधिकृत कालोनियों में रह रहा होगा, जहाँ समुचित जलापूर्ति और स्वच्छता सुविधाएं मुहैया नहीं होंगी। शहरों के सीमित संसाधन–आधार पर दबाव, वायु और ध्वनि प्रदूषण और जल निकायों में गिरने वाले मनुष्यजन्य और औद्योगिक कचरे से भविष्य में पर्यावरण की स्थिति और भी खराब हो जायेगी, जो पहले ही बरबादी के कग़ार पर है।[173]

पर्यावरण ह्रास का आर्थिक प्रभाव :

- वायुमंडल में भारी मात्रा में कार्बन उत्सर्जित करने वाले देशों में अमेरीका, चीन, रूस और जापान के बाद भारत का पांचवाँ स्थान है। वायु और जल प्रदूषण, भूमि–ह्रास, वनाच्छादन में कमी, ताजा जल और समुद्री संसाधनों का अंधाधुंध दोहन और औद्योगिक कचरे का लापरवाही से निपटान, ये सब ऐसे कारण हैं, जिनका आर्थिक प्रभाव पड़ता है। 1995 में अनुमान लगाया गया था कि पर्यावरण ह्रास से भारत के सकल घरेलू उत्पादन (जी डी पी) को 4.53% क्षति पहुंचती है।[174] इस क्षति में अब अधिक बढ़ोतरी हो जाने का अनुमान है।
- पाकिस्तान में रावी नदी के रासायनिक प्रदूषण से मछली उद्योग को 2 लाख अमेरिकी डॉलर मूल्य का नुकसान होने का अनुमान है। पर्यावरण के कुल नुकसान की लागत हर वर्ष 180 करोड़ डॉलर होने का अनुमान है।[175]

जातीय और सामाजिक संघर्ष

वैश्वीकरण और गरीबी व असमानता जैसी समस्याओं को सुलझाने में देशों की नाकामयाबी की वजह से वर्तमान व्यवस्था के खिलाफ अलगाव और विरोध देखने में आया है। ध्रुवीकरण, असमानताओं और सामाजिक बिखराव की प्रतिक्रियास्वरूप कट्टरपंथी आंदोलन उठ खड़े हुए हैं। नयी पहचान और क्षेत्रीय आकांक्षाओं के लिए आंदोलनों के तेज होने से जातीय और धार्मिक संघर्ष तेज हो गये हैं। लेकिन इन सब में मानवीय गरिमा और मानवाधिकारों की उपेक्षा की जाती है और सीमित संसाधनों को हथियारों तथा सेनाओं पर बर्बाद किया जाता है। यह समस्या राजनेताओं के अवसरवाद, किसी खास समूह के लालच और असहिष्णुता की बढ़ती प्रवृत्ति की वजह से और गंभीर हो गयी है। नतीजा यह होता है कि जातीय और सामाजिक संघर्षों की संख्या और गंभीरता बढ़ती जाती है।

राष्ट्रमंडल में आंतरिक और बाह्य संघर्षों की कोई कमी नहीं है। राष्ट्रमंडल में एकमात्र बाह्य संघर्ष जो बड़े लम्बे समय से चला आ रहा है, वह भारत और पाकिस्तान के बीच है। लेकिन कांगो संघर्ष में कई राष्ट्रमंडल देश अलग अलग तरह से जुड़े हुए हैं। इसका असर इन देशों, खास तौर पर ज़िम्बाब्वे पर दिखाई दिया है जहां अशांति और गरीबी बढ़ रही है।

cyan black

पूर्वोत्तर भारत में जातीय संघर्ष और गरीबी

भारत में पूर्वोत्तर के सात राज्य कम विकसित क्षेत्रों में आते हैं। नागालैंड, मणिपुर, मिज़ोरम, असम और अरुणाचल प्रदेश की अर्थव्यवस्था को जातीय संघर्ष और विघटनकारी गतिविधियों के चलते भारी नुकसान उठाना पड़ा है। मणिपुर और त्रिपुरा की आबादी का एक–तिहाई, अरुणाचल प्रदेश में 60% और मेघालय, मिज़ोरम और नागालैंड में 85–95% के बीच जनजातीय लोग रहते हैं। इस क्षेत्र में असम में सबसे ज़्यादा आदिवासी रहते हैं, हालांकि वे राज्य की आबादी का केवल 12.8 प्रतिशत हिस्सा हैं। मैदानी राज्यों की तुलना में कम आबादी वाले पूर्वोत्तर क्षेत्र में 25–30 प्रतिशत के बीच आबादी गरीबी की रेखा से नीचे जीवन–यापन करती है। औसत प्रति व्यक्ति आय 3,530/– रुपये है, जो 5,440/– रुपये की अखिल भारतीय औसत प्रति व्यक्ति आय के मुकाबले 33 प्रतिशत कम है।[176] असम को छोड़कर इनमें से किसी भी पर्वतीय राज्य में रेलमार्ग नहीं है। बुनियादी सुविधाओं का अभाव, वाणिज्य, व्यापार और विकास गतिविधियों में निवेश की कमी, बढ़ती बेरोजगारी और तत्संबंधी समस्याएं, इस क्षेत्र में विकास के अभाव का कारण और परिणाम, दोनों हैं। इस क्षेत्र की गरीबी का स्तर केवल बिहार (42%), उड़ीसा (47%) और मध्यप्रदेश (37%) से कम है।

सहस्राब्दि के अंत में गरीबी की स्थिति

राज्य	गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोग	राज्य	गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोग
अरुणाचल प्रदेश	33.47%	मिज़ोरम	19.47%
असम	36.09%	नागालैंड	32.67%
मणिपुर	28.54%	त्रिपुरा	34.44%
मेघालय	33.87%		

बोगेनविल में पापुआ न्यूगिनी के साथ संबंधों को लेकर एक दशक से चले आ रहे संघर्ष से भारी तबाही हुई है। इससे स्वास्थ्य और शिक्षा संबंधी तमाम सेवाएं लगभग तबाह हो कर रह गयी हैं। कृषि और अन्य आर्थिक गतिविधियां ठप्प पड़ गयी हैं। एक पूरी की पूरी पीढ़ी शिक्षा सुविधाओं से वंचित होकर रह गयी है और असहिष्णुता की संस्कृति ने जन्म लिया है। सालोमोन और फीजी द्वीपों में जातीय संघर्षों से भी आर्थिक विकास और वितरण व्यवस्था पर बुरा असर पड़ा है। अफ्रीका में, खास तौर पर मोज़ाम्बिक, युगांडा और केन्या में भी जातीय संघर्ष से निवेश कम हुआ है, भेदभाव बढ़ा है और अधिकारों का अनेक तरह से उल्लंघन होने लगा है। इससे अर्थव्यवस्था कमज़ोर हुई है और कुछ खास समुदायों के लोग संसाधनों का लाभ उठाने से वंचित होते जा रहे हैं।

लेकिन राष्ट्रमंडल में सबसे बुरी तरह से प्रभावित क्षेत्र दक्षिण एशिया है जहां के लोग दुनिया के निर्धनतम लोगों में गिने जाते हैं। एशिया के अन्य अधिकतर देशों में जोरदार प्रगति हुई है और लोगों का जीवन स्तर लगातार ऊंचा उठ रहा है। लेकिन आंतरिक और बाह्य संघर्षों की वजह से भारत, पाकिस्तान, बांगलादेश और श्रीलंका इस प्रगति से वंचित रहे हैं।[177] बांगलादेश में चटगांव पहाड़ी क्षेत्र को लेकर अशांति के कारण नुकसान हुआ है और भारत के साथ संबंधों में समय–समय पर तनाव उत्पन्न हुआ है। श्रीलंका के उत्तर में तमिलों के एक वर्ग की स्वायत्तता या अलग देश की मांग की वजह से वर्षों से अशांति का माहौल बना हुआ है। इसमें कई हजार लोग मारे गये हैं, संपत्ति को भारी क्षति पहुंची है, देश की अर्थव्यवस्था धीमी पड़ गयी है और साक्षरता व स्वास्थ्य के क्षेत्र में आम तौर पर जो उपलब्धियां प्राप्त कर ली गयी थीं, उनमें गिरावट आयी है। देश के कुशल और प्रतिभाशाली नागरिक बड़ी संख्या में देश छोड़कर चले गये हैं। पाकिस्तान में शिया और सुन्नियों के झगड़े, मोहाजिर कौमी मूवमेंट के संघर्ष और पख्तूनों व बलूचों की अलग देश की मांग ने अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा असर डाला है। बड़ी तादाद में लोग बम धमाकों और इसी तरह की हिंसा के शिकार हुए हैं। संघर्ष वाले इन सब क्षेत्रों में महिलाओं के अधिकारों पर अक्सर प्रहार होता रहा है। भारत में साम्प्रदायिक दंगे और हिंसा मानों जिन्दगी का हिस्सा बन चुके हैं। कश्मीर में हिज़्बुल मुजाहिदीन और लश्करे तैयबा जैसे अलगाववादी संगठनों और पूर्वोत्तर में असम के बोडोलैंड तथा अन्य आंदोलनों के कारण अर्थव्यवस्था पर बुरा असर पड़ा है। इससे लाखों लोगों की रोजी–रोटी छिनी है और संपत्ति तबाह हुई है। भारत

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

और पाकिस्तान आजादी के बाद से ही कश्मीर को लेकर किसी न किसी तरह के संघर्ष में उलझे रहे हैं। इन सब देशों में इस तरह की युद्ध जैसी गतिविधियों की वजह से बच्चों को सेना में जबरन भर्ती होने को मजबूर होना पड़ा है, महिलाओं के साथ बलात्कार की घटनाएं हुई हैं और मानव अस्तित्व के लिए परिस्थितियां अनुकूल नहीं रह गयी हैं। इनसे उत्पादक गतिविधियों के लिए इन्सान की क्षमता समाप्त होती जाती है और लाखों लोग, जो अन्यथा अपने ही प्रयासों से अच्छा जीवन व्यतीत कर सकते थे, गरीबी के चंगुल में फंस गये हैं।

करीब एक दशक के विराम के बाद सन् 2000 में सारी दुनिया में सैन्य खर्च में भारी बढ़ोतरी हुई है। सबसे अधिक वृद्धि अफ्रीका और दक्षिण एशिया में हुई है। वास्तविक आंकड़ों के रूप में यह बढ़ोतरी अफ्रीका में 37 प्रतिशत और दक्षिण एशिया में 23 प्रतिशत रही है। 2002 में देशों द्वारा 80,000 करोड़ अमेरिकी डॉलर या विश्व के सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) का 2.5 प्रतिशत धन हथियार खरीदने पर खर्च किया गया।[178] सैन्य साज–सामान पर सबसे ज्यादा खर्च करने वाले प्रथम 15 देशों में ब्रिटेन और भारत शामिल हैं – दोनों राष्ट्रमंडल के सदस्य हैं।[179] इन संघर्षों का एक परिणाम यह निकला है कि दक्षिण एशिया विश्व के सर्वाधिक सैन्यकृत क्षेत्रों में से एक बन गया है। इस क्षेत्र के देशों ने 2002 में 1700 करोड़ अमेरिकी डॉलर से अधिक धन हथियारों पर खर्च किया।[180] मात्र एक तरह का सैन्य उपकरण–सुखोई–30, मल्टीरोल फाइटर एयरक्राफ्ट (यानी बहुउद्देश्यीय लड़ाकू विमान)–खरीदने के भारत के समझौते से देश के बजट पर भारी दबाव पड़ने की संभावना है, जो पहले ही संकट के दौर से गुज़र रहा है।[181] परमाणु शस्त्रागार के रखरखाव पर 15 अरब अमेरिकी डॉलर खर्च करने पड़ रहे हैं, जिसे भुखमरी झेल रहे करोड़ों लोगों को भोजन उपलब्ध कराने सहित, अधिक उत्पादक गतिविधियों पर खर्च किया जा सकता है।

छोटे हथियारों और हल्की शस्त्र प्रणालियों के अवैध व्यापार के विभिन्न पहलुओं के बारे में हाल में हुए संयुक्त राष्ट्र के सम्मेलन में मानव सुरक्षा के लिए एक अन्य गुप्त खतरे की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया। यह खतरा है दुनिया भर में करीब 50 करोड़ छोटे हथियारों का जो अवैध और गुप्त रूप से रखे जा रहे हैं।[182] हथियारों का 40 प्रतिशत व्यापार अवैध रूप से होता है। लेकिन इस से भी ज्यादा हथियार गैर–कानूनी बाज़ार में पहुंच जाते हैं। ये हल्के अवैध हथियार और छोटी शस्त्रास्त्र प्रणालियां तनाव वाले इलाकों में चुम्बक की तरह खिंची चली जाती हैं जिससे जातीय संघर्ष बढ़ते हैं और इस प्रक्रिया में सीमित संसाधन बरबाद होते हैं। सस्ते दामों पर उपलब्ध हथियार तो कभी कभी एक बार के भोजन के बराबर दामों पर या फिर एक वक्त की रोटी के बदले में आसानी से मिल जाते हैं। इससे इन देशों की राज्यसत्ता कमज़ोर होती है। दक्षिण एशिया में 7.5 करोड़ आग्नेय–अस्त्रों में से 80 फीसदी नागरिकों के हाथ में हैं–इन हथियारों में से तीन चौथाई भारत और पाकिस्तान में हैं।[183] अनुमान है कि बांगलादेश में 50,000 अवैध छोटे हथियार हैं जो अपराधियों के हाथों में हैं। संघर्ष के समाधान के लिए चूंकि हल्के हथियारों का इस्तेमाल किया जाता है इसलिए उस देश में हर रोज औसतन 4 लोगों की जान जाती है और 10 घायल होते हैं।[184] वैध हो या अवैध, हथियारों का व्यापार बहुत बड़ा है। जिन देशों में इस तरह के हथियारों का पता लगाने और उनपर नियंत्रण के लिए कोई कारगर प्रणाली नहीं है और जो देश सीमा पार से ऐसे हथियारों की तस्करी को रोकने में असफल हैं, वहां यह खतरा और अधिक है। हथियार चाहे कानूनी तौर पर बेचे जा रहे हों या गैर–कानूनी तौर पर, इनका व्यापार काफी बड़ा है। दुनिया में हथियारों का सबसे बड़ा व्यापारी अमरीका है। सम्मेलन में अमरीका अवैध हथियारों की समस्या का सबसे अधिक सामना कर रहे अफ्रीकी देशों, कनाडा और भारत जैसे राष्ट्रमंडल देशों के इन हथियारों पर पाबंदी लगाने के प्रयासों को विफल करने में कामयाब रहा है। हथियारों की समस्या से ग्रस्त देश चाहते थे कि समस्या के समाधान के लिए सम्मेलन में कोई कठोर कार्य योजना सामने आये। इससे अवैध हथियारों पर नियंत्रण के प्रयासों को और शीघ्रता तथा निश्चितता के साथ आगे बढ़ाने के काम में सहायता मिलती। बहरहाल, इस विषय पर अपनी तरह के इस पहले सम्मेलन से एक ऐसी प्रक्रिया शुरू हुई है जिससे इस मुद्दे पर और अधिक ध्यान दिया जाएगा।

जातीय और सामाजिक संघर्ष वाले क्षेत्रों में आग्नेय अस्त्रों से घायल व्यक्तियों को हमेशा समय पर तथा समुचित चिकित्सा देखभाल नहीं मिलती। चिकित्सा देखभाल के अभाव में उनके आंशिक या अस्थायी विकलांग होने का खतरा रहता है और वे अन्य सबल लोगों के समान जीविका अर्जित करने की क्षमता खो बैठते हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि सार्वजनिक सेवाओं में गिरावट और दीर्घावधि की सशस्त्र हिंसा के बीच सीधा संबंध है। सरकार द्वारा प्रदान की जा रही स्वास्थ्य, शिक्षा और नगरीय सेवाओं में व्यवधान आता है, सार्वजनिक और निजी निवेश कम हो जाता है और व्यापार तथा वाणिज्य को क्षति पहुंचती है।[185] गोलीबारी के बीच फंसे पीड़ित व्यक्तियों, खासकर बच्चों और महिलाओं पर भय का मानसिक असर पड़ता है। ऐसे क्षेत्रों में मानव विकास को कई तरह की क्षति पहुंचती है। सबसे बुरा असर गरीबों पर पड़ता है।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd